संस्कृत लोकोक्ति कोश

शशि तिवारी

स सुहृद् व्यसने यः स्यात्।
वक्त पड़े पर जानिए, को बैरी को मीत।

इतोऽन्धकूपः ततो दन्दशू
इधर कुआँ उधर खाई।

शाठ्यं समाचरेत्।
को तैसा।

प्रत्युद्यमः कीदृ
किस काम का?

तर्पणीयो मनुष्यः।
कभी तृप्त नहीं होता।

हि लभ्यते।

मनुष्य धन

हसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्।
बिना विचारे जो करे, सो पाछे पछताय।

हि विधिः।
होनी बड़ी बलवान्

पुस्तक-परिचय

संस्कृत लोकोक्तियाँ भारतीय मनीषियों के अनुभव और ज्ञान को सूत्र रूप में प्रकट करती हैं। लोकजीवन का सत्य इनका मूल स्रोत है और लोककल्याण इनका उद्देश्य। प्रस्तुत कोश में संस्कृत समझने वाले लोगों के बीच बोली जाने वाली एवं जीवनदर्शन के निचोड़ को सामने रखने वाली सोलह सौ संस्कृत लोकोक्तियाँ संकलित की गई हैं। अपने मुख्य विषय के आधार पर इनको दस खण्डों के अन्तर्गत सत्तावन शीर्षकों में वर्गीकृत किया गया है। सभी लोकोक्तियों का हिन्दी में भावानुवाद दिया गया है। समान अभिप्राय वाली हिन्दी लोकोक्ति यथासम्भव साथ में उद्धृत की गई है। यह कोश लोकचिन्तन का अवबोधन कराने के कारण सभी वर्ग के पाठकों के लिए उपयोगी है।

Sale Price Rs. 60/-

संस्कृत-लोकोक्ति-कोश

(वर्गीकृत एवं हिन्दी भावानुवाद सहित)

संस्कृत-लोकोक्ति-कोश

(वर्गीकृत एवं हिन्दी भावानुवाद सहित)

माननीय प्रोफेसर नवजीवन रस्तोगी
को आदर सहित —
शशि तिवारी
11-5-1997

शशि तिवारी

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मन्त्रालय
भारत सरकार

फाल्गुन 1917 (फरवरी 1996)

ISBN: 81-230-0459-1

मूल्य: रु. 60.00

निदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मन्त्रालय, भारत सरकार, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित।

विक्रय केन्द्र • प्रकाशन विभाग

- सुपर बाजार (दूसरी मंजिल), कनाट सर्कस, नई दिल्ली-110001
- कामर्स हाउस, करीमभाई रोड, बालार्ड पायर, बम्बई-400038
- 8 एस्प्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता-700069
- एल. एल. ए. आडीटोरियम, 736 अन्नसलै, मद्रास-600002
- बिहार राज्य सहकारी बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, पटना-800004
- निकट गवर्नमेंट प्रेस रोड, त्रिवेन्द्रम-695001
- 10-बी., स्टेशन रोड, लखनऊ-226019
- राज्य पुरातत्त्वीय संग्रहालय बिल्डिंग, पब्लिक गार्डन्स, हैदराबाद-50004

DR KARAN SINGH

3, NYAYA MARG
CHANAKYAPURI
NEW DELHI-110021



वेदाहमेतं पुरुषम्महान्तं आदित्यवर्णम्

प्राक्कथन

भारत के सांस्कृतिक चिन्तन के कण-कण में कल्याण भावना व्याप्त है। प्राचीन मनीषियों द्वारा दिया गया 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का उदात्त उपदेश आज तक विश्वशान्ति और सामाजिक सौहार्द का आधारभूत सिद्धान्त है। व्यक्ति और समाज के लिए श्रेयस्कर वचनों और नीतिवाक्यों से वैदिक वाङ्मय और संस्कृत साहित्य के प्रसिद्ध ग्रन्थ भरे पड़े हैं। ये अमूल्य सुभाषित संस्कृत भाषा के रत्न हैं, जो सदियों से भारतीयों के स्मृतिपटल पर अंकित हैं और समय-समय पर उनका मार्गदर्शन करते हैं। इनमें पीढ़ियों के अनुभव समाहित हैं, इसलिए लोग प्रायः बातचीत में इनको दोहराते और याद करते हैं।

हर्ष का विषय है कि संस्कृत भाषा और साहित्य की प्रतिष्ठित लेखिका डॉ० शशि तिवारी ने लोकोक्तियों को संकलित करने की दिशा में एक सत्प्रयास किया है। पाठक लोक-जीवन की सत्यानुभूतियों के इस कोश का अधिक से अधिक उपयोग कर सकें, इसके लिए उनका विषयों के अनुसार वर्गीकरण और हिन्दी में अनुवाद अभिनन्दनीय है।

मैं अनुभव करता हूँ कि संस्कृत लोकोक्तियों के प्रकाशन से भारत सरकार के सूचना और प्रसारण मन्त्रालय के प्रकाशन विभाग ने एक सराहनीय कार्य किया है। मुझे विश्वास है कि सभी वर्ग के पाठक इस कृति से लाभान्वित होंगे।

कर्ण सिंह

सोमवार, दिनांक 25.12.1995
नयी दिल्ली-110021

(कर्ण सिंह)

भूमिका

किसी भी देश और जाति के जीवन में लोकसंस्कृति और लोकसाहित्य का विशेष महत्त्व होता है। भारतीय संस्कृति की आत्मा लोकसंस्कृति में निवास करती है। लोकजीवन में बिखरे अनन्त लोकाचारों, संस्कारों, विश्वासों तथा परम्परागत विचारों से ही हमारी संस्कृति का स्वरूप परिपुष्ट हुआ है। दर्शनार्थक लोक् धातु से व्युत्पन्न हुए *'लोक'* शब्द का अर्थ है, *'देखने वाला'*। समस्त प्राणी-जगत् देखने की क्रिया को करने के कारण 'लोक' है। यहाँ *'लोक'* का तात्पर्य मनुष्य-समाज से है, जिसकी भावनाओं, विचारों, परम्पराओं, क्रियाओं और मान्यताओं में वास्तविक कल्याण के तत्त्व विद्यमान रहते हैं और जिनसे लोकसंस्कृति का रूप निर्मित होता रहता है। अतः लोक अपनी नैसर्गिक प्रकृति से कल्याणमयी संस्कृति का निर्माण करता है। लोकजीवन में समाविष्ट सम्पूर्ण भावात्मक एवं सर्जनात्मक सामग्री, मान्यताएं और प्रथाएं लोकसाहित्य को जन्म देती हैं। यह साहित्य समाज को अभिव्यक्त करता है। लोक-साहित्य के अन्तर्गत लोकगीत, लोकगाथा, लोककथा और लोकनाट्य के अतिरिक्त वाणी-व्यापार के कुछ अन्य रूप भी प्राप्त होते हैं, जिनको लोकोक्तियों, मुहावरों और पहेलियों में संज्ञाबद्ध किया जाता है।

लोकोक्तियों की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। संसार की सभी प्राचीन भाषाओं के काव्यों में इनका बाहुल्य है। प्राचीन संस्कृत-साहित्य इस दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध है। संस्कृत के लगभग प्रत्येक प्राचीन एवं प्रसिद्ध काव्य में ऐसे अनेक अनमोल रत्नखण्ड बिखरे हुए हैं, जिनको *'सुभाषित', 'सूक्ति'* या *'लोकोक्ति'* का नाम दिया जा सकता है। **न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः** - ऋग्वेद की इस सूक्ति में लोकोक्ति का मूल है। वास्तव में संस्कृत में लोकोक्ति का मूलरूप *'सुभाषित'* या *'सूक्ति'* ही है। सुन्दर रूप से कहा गया कथन सुभाषित है - **सुष्ठु भाषितं सुभाषितम्।** एक सुभाषित में ही सुभाषित को *'रत्न'* कहा गया है - **पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि जलमन्नं सुभाषितम्।** सूक्ति का सामान्य अर्थ है- सौष्ठवपूर्ण कथन। जिस प्रकार वैदिक मन्त्रों के समूह *'सूक्त'* कहलाते हैं[१], उसी प्रकार संस्कृत कवियों की वाणी को *'सूक्ति'*

---

१. प्रति सूक्तानि हर्यतम्। ऋग्वेद. १/९३/१.

कहा जाता है।[१] लोकोक्ति का अर्थ है - लोक की उक्ति अर्थात् विराट् समाज की मान्यता। शाब्दिक दृष्टि से लोक की प्रत्येक उक्ति लोकोक्ति है, किन्तु साहित्य-समीक्षा में यह शब्द एक विशेष अर्थ में सीमित और रूढ़ हो गया है। अब लोकप्रचलित कुछ विशिष्ट प्रकार की उक्तियों को ही *'लोकोक्ति'* कहते हैं। एक व्युत्पत्ति के अनुसार लोककल्याण के लिए कही गई उक्ति लोकोक्ति है **—लोककल्याणाय उक्तिः लोकोक्तिः**, तो दूसरी व्युत्पत्ति के अनुसार लोकप्रचलित उक्ति लोकोक्ति है **— लोकप्रचलिता उक्तिः लोकोक्तिः।** अतः लोकोक्ति सुन्दर रीति से कहा गया वह कथन है, जो लोकव्यापी प्रभाव से पूर्ण हो और कल्याणकारी भी हो।

लोकोक्तियां लोकानुभव से सिद्ध हुए ज्ञान का कोष हैं। जिन सत्य तथ्यों का साक्षात्कार मनुष्य अपने जीवन-काल में करता रहता है, उनका सम्पूर्ण सार इन लोकोक्तियों में संगृहीत है। प्रत्यक्ष घटना, दृश्य अथवा कार्य-व्यापार के आधार पर मनुष्य जो अनुभव संचित करता है, उनका संक्षिप्त प्रकाशन लोकोक्तियों में प्राप्त होता है। इनमें मुख्य रूप से लोकसंस्कृति को नियन्त्रित करने वाले नैतिक विचारों और लौकिक ज्ञान की अभिव्यक्ति होती है। 'इनमें थोथा पुस्तकीय ज्ञान नहीं होता है। जीवन के ज्ञान का असली सोना जन-जन के अनुभव की आंच में तपकर जब कुन्दन बन जाता है, तब उसे लोकोक्ति कहने लगते हैं।'[२]

व्यक्ति की एक सहज उक्ति मानव-जीवन की किसी सत्यानुभूति को प्रकट करने के कारण सभी मनुष्यों के मन-मस्तिष्क पर प्रभाव डालकर जब सार्वकालिक और सर्वग्राह्य बन जाती है, तब *'लोकोक्ति'* कहलाती है। इसीलिए लोकोक्तियां किसी एक व्यक्ति की न होकर सबकी होती हैं। ये लोगों के सतत निरीक्षण और अनुभव से निष्पन्न हुए नैतिक विचारों के अतिरिक्त संस्कृति के तत्त्व, पौराणिक कथाओं के स्वरूप तथा इतिहास की घटनाओं पर भी प्रकाश डालती हैं। यही कारण है कि लोकोक्तियां किसी भी प्रजा की विचारधाराओं, आकांक्षाओं और

---

१. दण्डी, काव्यादर्शः, १/३४; राजशेखर, काव्यमीमांसा, ३.

२. डॉ. भोलानाथ तिवारी, बृहत् हिन्दी लोकोक्तियां, दिल्ली, १९८५, भूमिका, पृ.९.

सामर्थ्यों को जानने का महत्त्वपूर्ण साधन हैं। ये जीवन-निर्माण में संक्षिप्त और सशक्त सूत्रों का काम करती हैं। ये विशाल अनुभवराशि को लाघवता से प्रस्तुत करती हैं। संक्षिप्तता, सारगर्भिता, सरलता, सप्राणता और लोकप्रियता लोकोक्तियों की मुख्य विशेषताएं हैं। इनकी भाषा सरल और प्रभावशाली होती है। वे लोकोक्तियां अधिक लोकप्रिय होती हैं, जो समाज-विशेष के जीवन-दर्शन से जुड़ जाती हैं। वे लोगों को कण्ठस्थ होती हैं और एक हितैषी या मित्र की भांति कठिन समय में उनका मार्गदर्शन करती हैं। अपनी प्रभविष्णुता और पैनेपन के कारण वे मानव-मन पर स्थायी और देर तक ठहरने वाला प्रभाव डालती हैं। व्याकरण की दृष्टि से लोकोक्तियां अपने आप में पूर्ण वाक्य हैं। तभी प्रयोग के समय ये अपने मूल रूप में रहती हैं। मुहावरों की तरह वाक्य-रचना के अनुसार परिवर्तित नहीं होती। 'लोकोक्ति को थोड़े विस्तार से इस रूप में परिभाषित किया जा सकता है – विभिन्न प्रकार के अनुभवों, पौराणिक तथा ऐतिहासिक व्यक्तियों एवं कथाओं, प्राकृतिक नियमों और लोकविश्वासों आदि पर आधारित चुटीली, सारगर्भित, सजीव, संक्षिप्त, लोकप्रचलित ऐसी उक्तियों को 'लोकोक्तियां' कहते हैं, जिनका प्रयोग बात की पुष्टि या विरोध, सीख तथा भविष्य-कथन आदि के लिए किया जाता है।"[१]

लोकोक्ति एक नैतिक और व्यावहारिक कथन है, इसलिए इसे *'सूक्ति'* और *'सुभाषित'* से पूर्णतया पृथक् कर पाना सरल नहीं है। इनमें कुछ अन्तर तो पर्याप्त स्पष्ट हैं, यथा—लोकोक्ति जन-जन के मन को स्पर्श करती है, परन्तु सूक्तियों के लिए यह आवश्यक नहीं है। लोकोक्ति का मूलकर्ता अज्ञात हो सकता है, जबकि सूक्ति में उसके रचनाकार के व्यक्तित्व की छाप होती है। लोकोक्ति सामान्य जन की अकृत्रिम उक्ति है, तो सूक्ति में साहित्यिक चमक होती है। उल्लेख्य है कि बहुत सी लोकोक्तियां सूक्ति भी हो सकती हैं, जबकि सभी सूक्तियां लोकोक्ति नहीं हो सकतीं।

संस्कृत बोलने, पढ़ने और समझने वाले लोगों के बीच समय-समय पर बोली

---

१. डॉ. भोलानाथ तिवारी, बृहत् हिन्दी लोकोक्तियां, दिल्ली, १९८५, भूमिका, पृ.९.

और दोहरायी जाने वाली उक्तियां ही *'संस्कृत लोकोक्तियां'* कही जा सकती हैं। लोकोक्तियां बोलने वाले के साथ-साथ चलने वाला ज्ञान है, इसलिए ये बोलने वाले की स्मृति और बौद्धिक स्तर के अनुसार न्यूनाधिक रूप में व्यवहृत होती हैं। आज संस्कृतज्ञों द्वारा संस्कृत के प्रसिद्ध ग्रन्थों या प्रतिष्ठित कवियों की अनेक पंक्तियां लोकानुभव से परिपुष्ट होने के कारण परिस्थिति के अनुसार अपनी भावाभिव्यक्ति को सक्षम और अपने कथन को प्रामाणिक बनाने के लिए बोली जाती हैं। बहुधा संस्कृत से सुपरिचित न होने पर भी जनसामान्य के द्वारा इनका प्रयोग किया जाता है। निस्सन्देह अब संस्कृत-साहित्य के अनेक संक्षिप्त सुभाषित-वाक्य या सूक्ति-छन्द लोकोक्तियों का रूप धारण कर चुके हैं। क्या भारतीय संस्कृति और संस्कृत भाषा से परिचित कोई भी व्यक्ति बात-बात पर गीता, नीतिशतक, हितोपदेश आदि ग्रन्थों के वाक्यों के स्मरण से स्वयं को रोक सकता है? क्या भास, कालिदास, शूद्रक, भारवि, भवभूति आदि कवियों के नाटकों और काव्यों के प्रशंसक विद्वान् उचित अवसर पर उनकी सारगर्भित उक्तियों को दोहराने का लोभ-संवरण कर सकते हैं ? जब काव्य लोकजीवन की अभिव्यक्ति है, तो क्रान्तदर्शी कवियों द्वारा अपनी कृतियों में सार्वजनीन सत्यानुभूतियों का पद-पद पर उद्घाटन करना अत्यन्त सहज है। फिर कभी कवि स्वयं ही अपने पात्रों के मुख से लोकजीवन के अनुभवसिद्ध वाक्यों को उद्धृत करवाते हैं, जैसे—वाल्मीकीय रामायण में सीता ने पण्डितों द्वारा कही गई लोकोक्ति (लोकापवाद) को याद किया है।[१] कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक में राजा दुष्यन्त ने लोगों के बीच प्रसिद्ध हुए कथन को उद्धृत किया है।[२] इस प्रकार संस्कृत में एक ओर अनेक ज्ञातनामा कवियों के काव्यों की सुन्दर पंक्तियां लोकोक्तियों की श्रेणी में आती हैं; तो दूसरी ओर रचयिता के नाम के विना गद्य या पद्य में निबद्ध ऐसी कई उक्तियां लोगों में प्रचलित दिखाई देती हैं, जो निश्चित रूप से लोकोक्तियों के नाम से पहचानी जा सकती हैं।

---

१. लोकप्रवादः सत्योऽयं पण्डितैः समुदाहृतः।
अकाले दुर्लभो मृत्युः स्त्रिया वा पुरुषस्य वा।। सुन्दरकाण्ड, २५/१२.

२. इदं तत् प्रत्युत्पन्नमतिस्त्रैणमिति यदुच्यते। अभिज्ञा० ५/२१ के बाद।

संस्कृत लोकोक्तियां सर्वप्रथम वेदों में उपलब्ध होती हैं। वैदिक मन्त्रों में प्राप्त ये उक्तियां नीति, धर्म, व्यवहार, परिवार आदि विविध विषयों से सम्बद्ध हैं। आज उपनिषदों के अनेक वाक्य यथार्थ लोकवृत्ति और शाश्वत सत्य का प्रतिपादन करने के कारण लोकोक्तियों की तरह प्रयुक्त होते हैं। रामायण, महाभारत और गीता के अनेक श्लोक या उनके अंश जीवन-सन्देश से समाविष्ट होने के कारण लोकोक्तियों के समान लोकप्रिय हैं। त्रिपिटक और जातककथाओं में भी लोकोक्तियों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है। काव्य में अर्थगौरव कवि के वाग्वैभव का मापदण्ड है, इसीलिए प्राचीन संस्कृत-कवियों ने सूक्तियों और लोकोक्तियों का अपनी कृतियों में सुन्दर रूप से प्रयोग किया है। सत्य ही ये काव्य-कृतियों में काव्यचमत्कार और उक्तिवैचित्र्य को उत्पन्न करने के साथ-साथ जीवन के शाश्वत मूल्यों के प्रति कवियों की आस्था और मानवीय भावों के प्रति संवेदनशीलता को भी प्रकट करती हैं। संस्कृत के गीतिकाव्य प्रमुख रूप से जीवन को सुखमय बनाने के लिए नीति, धर्म, जगत् आदि से सम्बद्ध विषयों को गेय और मुक्तक छन्दों में प्रस्तुत करते हैं। भर्तृहरि का नीतिशतक इस दृष्टि से सर्वोपरि है।

सूक्तियों की लोकप्रियता के कारण प्राचीन काल से ही उनके आकर्षक और बहुविषयव्यापी प्रतिनिधि संकलन तैयार किए गए। सम्भवतः इस प्रवृत्ति का उदय पहले प्राकृत और अपभ्रंश के कवियों में हुआ तथा हाल की गाथासप्तशती (प्रथम शताब्दी ई.) इस कोटि का प्रथम संकलन है, जो प्राप्त होता है। इसके अनन्तर ग्यारहवीं शताब्दी ई. में संस्कृत-सुभाषितों का एक उत्कृष्ट संकलन 'कवीन्द्र-वचनसमुच्चय' नाम से किया गया, जिसमें कई अप्राप्त काव्यों के छन्द भी उपलब्ध होते हैं। इस प्रकार के संकलनों में विषयों का विस्तार क्रमशः बढ़ता गया। पर इनमें निश्चय ही कई लोकप्रचलित पद्य दृष्टिगोचर होते हैं। संस्कृत के प्राचीन नीतिग्रन्थों और कथाग्रन्थों का मुख्य उद्देश्य जीवनोपयोगी कर्तव्योपदेश, नीतिशिक्षा और आचारशिक्षा है, अत एव इनके अनेक सरल तथा प्रभावोत्पादक वाक्यों या पद्यों का लोकोक्तियों के रूप में प्रचलन अत्यन्त स्वाभाविक है। जनमानस द्वारा सरलता से ग्राह्य होने के कारण पञ्चतन्त्र, हितोपदेश, चाणक्यनीति, विदुरनीति आदि में कई पद्य अविकल रूप से ज्यों के त्यों उद्धृत हैं। इस प्रकार संस्कृत लोकोक्तियों

के नाम से अभिहित किया जाने वाला 'लोकानुभूत-शब्दज्ञान' वस्तुतः विशाल संस्कृतसाहित्य के मन्थन से उद्‌भूत हुआ वह साररूप अमृत है, जो लोगों के लिए कल्याणकारी होने से अत्यन्त लोकप्रिय रहा है।

संस्कृत की लोकोक्तियां भारतीय ज्ञान के अमर और अमूल्य रत्न-दीप हैं। ये प्राचीन काल से ही एक शुभचिन्तक की भांति न केवल जन-मानस का मार्गदर्शन कर रही हैं, अपितु जीवन में परिस्थिति-जनित समस्याओं का तुरन्त समाधान सुझाकर जीवन के लक्ष्यों की ओर सतत बढ़ते रहने की शक्ति और प्रेरणा भी प्रदान करती हैं। संस्कृत के प्राचीन साहित्य में प्रकीर्ण रूप से प्राप्त होने वाली ये लोकोक्तियां अतीव सारगर्भित, मार्मिक, मधुर और सरल हैं। इनके लघु आकार में जन-जन के लिए सदा और सर्वत्र उपयोगी नैतिक और व्यावहारिक सन्देश एवं शाश्वत जीवनदर्शन के संकेत गागर में सागर की भांति समाए हुए हैं। इनकी मधुरता की प्रशंसा ही एक सुभाषित का विषय है - **तस्माद् हि काव्यं मधुरं तस्मादपि सुभाषितम्।**

संस्कृत लोकोक्तियों में भारत के सांस्कृतिक चिन्तन का बृहत् स्वरूप प्रतिबिम्बित हुआ है। इनका विषय प्रायः जीवन का प्रत्येक क्षेत्र है। इनमें व्यक्ति, परिवार, समाज, धर्म, नीति, अध्यात्म, व्यवहार, आशीर्वाद आदि से सम्बद्ध व्यापक नियमों, सिद्धान्तों, भावनाओं, मान्यताओं और आचार-विचारों का समावेश है। पारम्परिक धारणाओं की संवाहक होने से ये लोकोक्तियां समयुगीन अनुभूतियों को समान रूप से व्यञ्जित करती हैं। भारतीयों का लोकचिन्तन इनसे सदा निर्देशित और प्रभावित हुआ है। दूसरी भारतीय भाषाओं में संस्कृत लोकोक्तियों के समकक्ष उक्तियों की उपलब्धि और प्रचलन इसका प्रमाण है। इसीलिए यदि हिन्दी भाषा की अनेक लोकोक्तियां संस्कृत की लोकोक्तियों के कथ्य या भाव को समान या कुछ भिन्न रूप में प्रस्तुत करती हुई दिखाई देती हैं, तो इसमें आश्चर्य क्या है?

प्रस्तुत संकलन में संस्कृत साहित्य के लगभग पचहत्तर प्रसिद्ध ग्रन्थों से वाक्य, उपवाक्य, पाद या छन्द के रूप में प्राप्त होने वाली उन पंक्तियों का चयन किया गया है, जो नीतिवचन, लोकमान्यता या लोकप्रमाण को अभिव्यक्त करने

के कारण संस्कृत पढ़ने या समझने वाले लोगों में लोकोक्तियों के रूप में बहुप्रयुक्त हैं। इनके संकलन में उक्ति की लोकप्रसिद्धि और उसमें निहित अनुभूति की व्यापकता को ध्यान में रखा गया है। अनेक ऐसी लोकोक्तियां भी संकलित की गई हैं, जो अज्ञातनामा होने से अपने नाम को सार्थक करती हैं। उक्ति का वक्ता या लेखक ज्ञात हो या अज्ञात, ये वे लोकोक्तियां हैं, जो संस्कृत जानने वालों की जिह्वा पर निवास करती हैं। प्रत्येक लोकोक्ति के स्रोत को जानना न संभव है और न आवश्यक; क्योंकि ये जिनके द्वारा बोली जाती हैं, उनके विचारों को पुष्ट करती हुई उनकी ही उक्ति लगती हैं।

प्रस्तुत कोश में सोलह सौ लोकोक्तियां संकलित हैं, जो विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत दस खण्डों में विभाजित हैं। लोकोक्तियों को शीर्षकों में विभक्त करना कदाचित् सरल नहीं है। कभी इनका विभाजन कृत्रिम और अवैज्ञानिक प्रतीत होता है, तो कभी इनके वर्गीकरण के लिए अनेक आधार दिखाई देते हैं। फिर अपने अर्थगत गाम्भीर्य और विस्तार के कारण कुछ लोकोक्तियां एक से अधिक शीर्षकों के अन्तर्गत परिगणित की जा सकती हैं, जैसे **अविवेकः परमापदां पदम्** - उक्ति अज्ञान और विपत्ति दोनों विषयों पर एक साथ प्रकाश डालती है। **महीयांसः प्रकृत्या मितभाषिणः** - माघ की उक्ति को वाणी, महापुरुष और स्वभाव, तीनों शीर्षकों के अन्तर्गत रखा जा सकता है। अतः पाठकों की सुविधा को ध्यान में रखकर ही संकलित संस्कृत लोकोक्तियों को उनके मुख्य प्रतिपाद्य के आधार पर पृथक्-पृथक् शीर्षकों में वर्गीकृत करने का प्रयास किया गया है। अत्यधिक प्रासंगिक कतिपय स्थलों को छोड़कर अन्यत्र पुनरुक्ति से बचा गया है। शीर्षकों के अन्तर्गत लोकोक्तियों को अकारादि क्रम से प्रस्तुत किया गया है। ज्ञात स्रोत वाली लोकोक्तियों के साथ उनके सन्दर्भग्रन्थ या रचयिता के नाम का उल्लेख अधिकतर किया गया है। एकाधिक बार उद्धृत होने वाले ग्रन्थों के नामों को संकेत के रूप में दिया गया है और इन संकेतों के साथ ग्रन्थों और कवियों के नामों की सूची कोश के प्रारम्भ में दे दी गयी है। सभी लोकोक्तियों के साथ उनके हिन्दी अनुवाद दिए गए हैं, जो शाब्दिक अनुवाद न होकर अधिकांश में भावानुवाद ही हैं। जहाँ सम्भव हुआ है, वहाँ समान अभिप्राय वाली हिन्दी लोकोक्ति साथ में उद्धृत

की गयी है। इस संकलन द्वारा एक ओर संस्कृत साहित्य में बिखरे हुए प्राचीन सांस्कृतिक बिन्दु उभर कर सामने आते हैं, तो दूसरी ओर वर्तमान लोकसंस्कृति की झलक भी मिलती है। इस प्रकार प्रस्तुत कोश भारत की लोकसंस्कृति की अक्षुण्ण परम्परा की एकरूपता के दिग्दर्शन का एक लघु प्रयास है।

संस्कृत लोकोक्तियों का एक संग्रह तैयार करने की प्रेरणा मुझे नई दिल्ली में स्थित श्रीरामायण विद्यापीठ के निदेशक श्रद्धेय स्वर्गीय डॉ. विशाल त्रिपाठी से प्राप्त हुई थी। कार्य की सम्पन्नता पर मैं उनके प्रति सादर श्रद्धासुमन समर्पित करती हूँ। भारत सरकार के सूचना और प्रसारण मन्त्रालय के प्रकाशन विभाग ने प्रस्तुत संकलन को एक प्रतिष्ठित प्रकाशन का अवसर दिया है, इसके लिए मैं प्रकाशन विभाग के निदेशक एवं नेहरू फेलो माननीय डॉ. ओम प्रकाश केजरीवाल के प्रति हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ। डॉ० केजरीवाल की सांस्कृतिक अभिरुचि और विद्वत्तापूर्ण परामर्श मेरे लिए बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुए हैं। प्रकाशन विभाग के वे अन्य विद्वान् बन्धुजन भी मेरे विशेष धन्यवाद के पात्र हैं, जिन्होंने इस कार्य को सुसम्पादित करने में सहयोग दिया।

मेरा सौभाग्य है कि विश्वविख्यात मनीषी वेदान्तविद् माननीय डॉ० कर्ण सिंह ने प्राक्कथन लिखकर इस कृति को गौरवान्वित किया है, एतदर्थ मैं उनकी सर्वाधिक आभारी हूँ। अन्त में मैं उन सभी मन्त्रद्रष्टा ऋषियों और क्रान्तदर्शी कवियों के प्रति आदरभाव से अपनी प्रणामाञ्जलि अर्पित करती हूँ, जिनके द्वारा सूत्ररूप में प्रणीत हुईं ये लोकानुभूत उक्तियां मानव मात्र को कर्तव्य, व्यवहारज्ञान, औचित्य और नीति का उपदेश देकर सतत जागरूक रहने की शिक्षा देती हैं –

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत।

शशि तिवारी

५४, साक्षर अपार्टमेण्ट्स,
ए-३, पश्चिम विहार,
नई दिल्ली - ११००६३

अनुक्रम



संकेतिका

अथर्व.	अथर्ववेदसंहिता
अभिज्ञा.	अभिज्ञानशाकुन्तलम्, कालिदास
अवि.	अविमारकम्, भास
ईशा.	ईशावास्योपनिषद्
उत्तर.	उत्तररामचरितम्, भवभूति
ऋग्वेद.	ऋग्वेदसंहिता
ऋतु.	ऋतुसंहारम्, कालिदास
ऐत.ब्रा.	ऐतरेयब्राह्मणम्
कठो.	कठोपनिषद्
कथा.	कथासरित्सागरः, सोमदेवभट्ट
काद.	कादम्बरी, बाणभट्ट
काव्या.	काव्यालङ्कारः, भामह
किरात.	किरातार्जुनीयम्, भारवि
कुमार.	कुमारसम्भवम्, कालिदास
केनो.	केनोपनिषद्
गाथा.	गाथासप्तशती, हाल
गीता	श्रीमद्भगवद्गीता
चरक.	चरकसंहिता, महामुनि चरक
चाण.	चाणक्यनीतिदर्पणः, चाणक्य
चाण.सू.	चाणक्यसूत्रम्, चाणक्य
चारु.	चारुदत्तम्, भास
चौर.	चौरपञ्चाशिका, बिल्हण
छा.उप.	छान्दोग्योपनिषद्
तैत्ति.उप.	तैत्तिरीयोपनिषद्
नैषध.	नैषधीयचरितम्, श्रीहर्ष
पञ्च.	पञ्चतन्त्रम्, विष्णुशर्मा
प्रतिमा.	प्रतिमानाटकम्, भास

प्रसङ्गा.	प्रसङ्गाभरणम्, (संग्रह) बम्बई
बुद्ध.	बुद्धचरितम्, अश्वघोष
बृह.उप.	बृहदारण्यकोपनिषद्
बृहत्.	बृहत्कथामञ्जरी आदि, क्षेमेन्द्र
भर्तृ.	भर्तृहरिशतकत्रयम्, भर्तृहरि
भाग.	श्रीमद्भागवतपुराणम्
भोज.	भोजप्रबन्धः, बल्लाल मिश्र
मध्यम.	मध्यमव्यायोगः, भास
मनु.	मनुस्मृतिः, मनु
महा.	महाभारतम्, व्यासमुनि
मालवि.	मालविकाग्निमित्रम्, कालिदास
मु.उप.	मुण्डकोपनिषद्
मुद्रा.	मुद्राराक्षसम्, विशाखदत्त
मृच्छ.	मृच्छकटिकम्, शूद्रक
मेघ.	मेघदूतम्, कालिदास
यजु.	यजुर्वेदः
योग.	योगवासिष्ठम्
रघु.	रघुवंशम्, कालिदास
रामा.	रामायणम्, महर्षि वाल्मीकि
विक्रम.	विक्रमोर्वशीयम्, कालिदास
शत.ब्रा.	शतपथब्राह्मणम्
शा. प.	शार्ङ्गधरपद्धतिः, शार्ङ्गधर
शिशु.	शिशुपालवधम्, माघ
समयो.	समयोचितपद्यमालिका, निर्णयसागरप्रेस
सु.र.भा.	सुभाषितरत्नभाण्डागारम्, आचार्य नारायण राम
सुभा.	सुभाषितावलिः, वल्लभदेव
स्वप्न.	स्वप्नवासवदत्तम्, भास
हितो.	हितोपदेशः, नारायणपण्डित

व्यक्तिपरक

शरीर / आरोग्य

आयुष्यं जललोलबिन्दुचपलम्।
हमारा जीवन पानी के बुलबुले के समान चंचल है।
पानी केरा बुद्बुदा अस मानुस कै जात।

आरोग्यं भास्करादिच्छेत्। - *पूजाप्रकाशः*
सूर्यदेव से आरोग्य की कामना करें।

इदं भस्मान्तं शरीरम्। - *ईशा.*
यह शरीर नश्वर है।

कायः कस्य न वल्लभः। - *पञ्च.*
अपना शरीर किसे प्यारा नहीं है?
जान किसे प्यारी नहीं ?

किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्। - *अभिज्ञा.*
सुन्दर आकृतियों के लिए कौन सी वस्तु अलंकार नहीं बन जाती ?

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्। - *चरक.*
धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का उत्तम साधन आरोग्य है।

धिगस्तु खलु मानुष्यम्। - *रामा.*
मनुष्य के जन्म को धिक्कार है। (वह प्रारब्ध कर्मों के फल भोगने के लिए होता है।)

न च व्याधिसमो रिपुः। - *समयो.*
व्याधि के समान कोई शत्रु नहीं है।

न शरीरं पुनः पुनः। - *चाण.*
मानवशरीर बार-बार नहीं मिलता है।
बड़े भाग मानुस तनु पावा।

पश्येम नु सूर्यमुच्चरन्तम्। - *ऋग्वेद.*
हम सूर्य को आकाश में ऊपर जाते हुए सदा देखें।

पश्येम शरदः शतम्। जीवेम शरदः शतम्। - *यजु./अथर्व.*
हम सौ वर्ष तक देखें। हम सौ वर्ष तक जियें।

प्रत्यासन्नेऽपि मरणे रक्षोपायो विधीयते।
मरण समीप होने पर भी रक्षा का उपाय करना चाहिए।

बहिस्सरति निःश्वासे विश्वासः कः प्रवर्तते। - *महा.*
जो सांस बाहर निकल गयी, उसका क्या विश्वास कि वह अन्दर आएगी भी या नहीं।

मरणं प्रकृतिः शरीरिणाम्। - *रघु.*
मरना शरीरधारी का धर्म है।
मृत्यु न टाले टले।

यथौषधं स्वादु हितं च दुर्लभम्।
ऐसी ओषधि दुर्लभ है जो स्वादिष्ट हो और हित भी करे।

रम्याणां विकृतिरपि श्रियं तनोति। - *किरात.*
स्वभाव से सुन्दर लोगों में विकृति भी शोभा ही उत्पन्न करती है।

रसमूला हि व्याधयः।
स्वाद ही बीमारियों का कारण है।
जीभ रोगों की जड़।

व्याधितस्यौषधं मित्रम्। - *चाण.*
रोगी के लिए ओषधि ही मित्र है।

व्याधिना को न पीडितः। - *चाण.*
ऐसा कौन है, जो व्याधि से पीड़ित नहीं है ?

शरीरं व्याधिमन्दिरम्।
शरीर रोग का घर है।

शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्। - *कुमार.*
शरीर निश्चय ही धर्म का मुख्य साधन है।
१. साधन धाम मोक्ष कर द्वारा।
२. एक तन्दुरुस्ती हज़ार नियामत।

सम्यक्स्वापो वपुषः परमारोग्याय। - *काव्यमीमांसा*
समुचित नींद शरीर का आरोग्य बढ़ाती है।

सर्वशोभनीयं सुरूपं नाम। - *प्रतिमा.*
सुन्दर रूप पर सभी चीजें अच्छी लगती हैं।

कर्म

अकृत्यं नैव कर्तव्यं प्राणत्यागेऽप्युपस्थिते। - *पञ्च.*
प्राण जाने की स्थिति आने पर भी मनुष्य को अनुचित कर्म नहीं करना चाहिए।

अकृत्यं मन्यते कृत्यम्। - *पञ्च.*
जो बुरे काम को भी भला समझता है, उसका क्या कहना ?

अतिरभसकृतानां कर्मणामाविपत्तेर्भवति हृदयदाही शल्यतुल्यो विपाकः। - *भर्तृ.*
विना सोचे किसी काम को जल्दी में कर डालने से उसका विपरिणाम कांटे के समान दिल में चुभता रहता है। (सुपरिणाम का सदा स्वागत होता है।)
बिना विचारे जो करै, सो पाछे पछताय।

अपरीक्ष्य न कर्तव्यं कर्तव्यं सुपरीक्षितम्। - *पञ्च.*
परीक्षा किए विना कोई कार्य नहीं करना चाहिए। भलीभांति पूरी जानकारी करके ही कार्य करना चाहिए।
बिना विचारे जो करै, सो पाछे पछताय।

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।
अपने किए हुए शुभ या अशुभ कर्मों का फल अवश्य ही भोगना पड़ता है।

आमुखापाति कल्याणं कार्यसिद्धिं हि शंसति। - *कथा.*
जब कार्य के प्रारंभ में मंगल की बात हो, तो कार्य को सिद्ध हुआ समझना चाहिए।
होनहार बिरवान के होत चीकने पात।

आरब्धेऽपि सुदुष्करे हि महतां मध्ये विरामः कुतः। - *कथा.*
कठिन से कठिन काम को भी प्रारम्भ करके सज्जन उसे विना पूरा किए विश्राम नहीं करते हैं।

एका क्रिया द्व्यर्थकरी प्रसिद्धा।
एक काम से दो मतलब सिद्ध हों तो इससे अधिक कोई लाभ नहीं है।
१. एक पंथ दो काज।
२. आमों के आम गुठलियों के दाम।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। - *गीता*
तुम्हारा अधिकार केवल कर्म करने में है, उसके फल में कदापि नहीं।

कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः। - *गीता*
सभी मनुष्य प्रकृति से उत्पन्न तीन गुणों द्वारा परवश हुए ही कर्मों में प्रवृत्त होते हैं।

किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः। - *गीता*
कर्म क्या है और अकर्म क्या है, इस विषय में बड़े-बड़े बुद्धिमान् भी मोहित हो जाते हैं।

किमिवास्ति यन्न सुकरं मनस्विभिः। - *किरात.*
ऐसा कौन सा काम है, जिसे मनस्वी जन सहज ही नहीं कर डालते ?

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः। - *ईशा.*
इस जगत् में कर्मों को करते हुए ही सौ वर्षों तक जीने की इच्छा करनी चाहिए।

क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते। - *कुमार.*
सफलता मिलते ही उसके लिए किया गया कष्ट पुनः नवीनता (नयी ऊर्जा और उत्साह) धारण कर लेता है।

गहना कर्मणो गतिः। - *गीता*
कर्मों की गति को जानना कठिन है।

ज्ञानं भारः क्रियां विना। - *हितो.*
विना आचरण के ज्ञान बोझ है।

तस्मात् असक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर। - *गीता*
आसक्तिरहित होकर कर्तव्यकर्मों का भलीभांति आचरण करो।

तस्माद्युध्यस्व भारत। - *गीता*
हे अर्जुन ! युद्ध करो। (अपने कर्तव्य कर्म करो।)

प्रायोऽशुभस्य कार्यस्य कालहारः प्रतिक्रिया। - *कथा.*
अशुभ कार्य में देरी करना प्रायः उसको रोकने का उपाय है।

मनसा चिन्तितं कार्यं वचसा न प्रकाशयेत्।
अन्यलक्षितकार्यस्य यतः सिद्धिर्न जायते ॥ - *चाण.*
जो बात मन से विचारे, उसे कहकर प्रकट न करें; क्योंकि जिस काम पर किसी दूसरे की दृष्टि लग जाती है, वह फिर पूरा नहीं होता है।

मनस्कृतं कृतं लोके न शरीरकृतं कृतम्।
इस संसार में मन से किया गया काम ही काम है, विना मन के हाथ-पांव से किया गया काम काम नहीं होता है।

य उ स्वयं वहते सो अरं करत्। - *ऋग्वेद.*
मन लगाकर काम करने वाला ही उसे ठीक तरह से करता है।

य एव करोति स एव भुङ्क्ते।
कर्म करने वाले को ही फल भोगना पड़ता है।

यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म। - *शत.ब्रा.*
यज्ञ ही सर्वश्रेष्ठ कर्म है।

यो यद्वपति बीजं हि लभते सोऽपि तत्फलम्। - *कथा.*
जो जैसा बोता है, वैसा फल पाता है।
१. जैसा करोगे वैसा भरोगे।
२. जो जस करहिं सो तस फल चाखा।

योगः कर्मसु कौशलम्। - *गीता*
निष्काम कर्मयोग कर्मों में कुशलता है।

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय। - *गीता*
हे अर्जुन ! कर्मफल में आसक्ति छोड़कर योग में स्थित होकर कर्म करो।

यो यत्र कुशलः कार्ये तं तत्र विनियोजयेत्। - *हितो.*
जो जिस काम में निपुण हो, उसे उसी काम में लगाएं।
जिसका काम उसी को साजे।

वहति ह वै वह्निर्धुरो यासु युज्यते। - *ऐत.ब्रा.*
कर्मशील व्यक्ति जिस काम में भी लगा दिया जाए, उसे पूरा करके ही छोड़ता है।

श्वः कार्यमद्य कर्तव्यम्।
जो काम कल करना हो, उसे आज ही कर डालें।
काल करे सो आज कर।

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत्। - *गीता*
हे कौन्तेय ! स्वाभाविक कर्म दोष से युक्त होने पर भी नहीं छोड़ना चाहिए।

सहजं किल यद् विनिन्दितं न खलु तत्कर्म विवर्जनीयम्।

- अभिज्ञा.

निन्दित भी जो काम वंश-परम्परा से चला आ रहा है, निश्चय ही उसे नहीं छोड़ना चाहिए।

सहसा विदधीत न क्रियाम्। *- किरात.*
एकाएक किसी काम को नहीं करना चाहिए। पहले सोचना और समझना चाहिए।

वाणी

अग्निदाहादपि विशिष्टं वाक्पारुष्यम्। *- चाण.*
वाणी की कठोरता अग्नि के दाह से भी अधिक कष्टकारी होती है।
कटुक वचन हैं तीर।

अनवसरे यदुक्तं सुभाषितं तच्च भवति हास्याय।
विना अवसर के कही गई अच्छी बात भी हंसी का कारण हो जाती है।

अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः। *- रामा./पञ्च.*
अप्रिय किन्तु हितकारी बात को कहने और सुनने वाले व्यक्ति दुर्लभ हैं।

अर्थभारवती वाणी भजते कामपि श्रियम्। *- सु.र.भा.*
अर्थ के भार से युक्त वाणी किसी अद्भुत शोभा को धारण करती है।

अल्पाक्षररमणीयं यः कथयति निश्चितं स वाग्मी। *- सु.र.भा.*
थोड़े शब्दों में मन को प्रसन्न करने वाली बात जो कहता है, वह निश्चय ही बोलने में चतुर है।

अवसरपठिता वाणी गुणगणरहितापि शोभते पुंसाम्।
अवसर के अनुसार कही गई वाणी गुणों से रहित होने पर भी सुहावनी लगती है और वक्ता की शोभा बढ़ती है।

कः परः प्रियवादिनाम्। *- चाण./हितो./पञ्च.*
प्रिय बोलने वाले के लिए कौन पराया है ?

कटुकं वा मधुरं वा प्रस्तुतवाक्यं मनोहारि।
कटु अथवा मधुर, किन्तु समय के अनुसार बोला गया वचन मन को हर लेता है।

कर्तव्यं हि सतां वचः। - *कथा.*
सज्जनों की बात माननी चाहिए।

किं करिष्यन्ति वक्तारः श्रोता यत्र न विद्यते। - *चाण.*
वक्ता वहाँ क्या करेंगे, जहाँ श्रोता न हो।

कोऽप्रियः प्रियवादिनाम्। - *चाण.*
प्रियवादी के लिए कोई अप्रिय नहीं है।

कोमलवचनं हरति प्रकोपम्।
कोमलवाणी क्रोध को नष्ट कर देती है।
मधुरवचन हैं ओषधि।

को वा दुर्जनवागुरासु पतितः क्षेमेण यातः पुमान्। - *पञ्च./भर्तृ.*
दुर्जनों की वाणी के फन्दे में पड़ा हुआ कौन मनुष्य कुशलतापूर्वक बाहर निकल सका है ?

क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम्। - *भर्तृ.*
शरीर को सुशोभित करने वाले सभी आभूषण नष्ट हो जाते हैं। केवल वाणी रूपी आभूषण ही चिरन्तन आभूषण है।

नवा वाणी मुखे मुखे। - *सु.र.भा.*
हर मुख में नयी वाणी होती है।
जितने मुंह उतनी बातें।

न हि प्रियं प्रवक्तुमिच्छन्ति मृषा हितैषिणः। - *किरात.*
हित चाहने वाले लोग प्रिय किन्तु मिथ्या बोलने की इच्छा नहीं करते हैं।

नापृष्टः कस्यचिद् ब्रूयात्। - *मनु.*
विना पूछे किसी के बीच में नहीं बोलना चाहिए।

नैको मुनिर्यस्य वचः प्रमाणम्। - *सु.र.भा.*
एक भी मुनि ऐसा नहीं है, जिसके वचन एकमात्र प्रमाण हों।

परोपकरणार्थाय वचने का दरिद्रता।
वचनों से ही दूसरों का उपकार होता हो, तो बोलने में दरिद्रता कैसी ?

प्रियवक्ता भवति धूर्तजनः। - *पञ्च.*
धूर्त व्यक्ति मीठा बोलता है।

प्रियवाक्यप्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः। - *चाण.*
मधुर भाषण करने से सभी प्राणी प्रसन्न होते हैं।

बहुवचनमल्पसारं यः कथयति विप्रलापी सः। - *सु.र.भा.*
जो थोड़ी सी बात को कहने के लिए लम्बा-चौड़ा व्याख्यान देता है, वह विप्रलापी है।

मधु तिष्ठति जिह्वाग्रे हृदि हालाहलं विषम्। - *हितो.*
दुर्जन की बोली तो मीठी होती है, पर हृदय में विष भरा रहता है।
मुँह में राम बगल में छुरी।

महीयांसः प्रकृत्या मितभाषिणः। - *शिशु.*
महापुरुष स्वभाव से ही कम बोलने वाले होते हैं।

मितं च सारं च वचो हि वाग्मिता। - *नैषध.*
थोड़े में सारयुक्त वचन बोलना ही वाक्कला है।

रक्षितव्यं सदा वाक्यम्। - *हितो.*
मनुष्य को चाहिए कि वह अपने वचन की सर्वदा रक्षा करे।

लौकिकानां हि साधूनामर्थं वागनुधावति।
ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति।। - *उत्तर.*
लौकिक साधुओं की वाणी अर्थ के अनुसार होती है; किन्तु आदि ऋषियों की वाणी में वह शक्ति है कि अर्थ उसका अनुसरण करता रहता है।

वचने का दरिद्रता। - *समयो.*
बोलने में कैसी दरिद्रता ?

वचस्तत्र प्रयोक्तव्यम् यत्रोक्तं लभते फलम्। - *पञ्च.*
बात वहां कहनी चाहिए, जहां कहने से कुछ लाभ हो।

वचोभूषा सत्यम्। - *प्रसङ्गा.*
सत्यवचन वाणी का भूषण है।

वादो हि तत्त्वस्य विनिर्णयाय।
शास्त्रार्थ तत्त्व के निर्णय के लिए होना चाहिए।

शास्त्रपूतं वदेद् वाक्यम्। - *चाण.*
शास्त्रसम्मत बात बोलनी चाहिए।

श्रुतेन यत्नेन च वागुपासिता ध्रुवं करोत्येव कमप्यनुग्रहम्।
- *काव्यादर्शः*
शास्त्रों और काव्यों के अध्ययन और अभ्यासरूप प्रयत्न द्वारा उपासना किए जाने पर वाग्देवता सरस्वती अवश्य ही कुछ न कुछ अनुग्रह करती हैं।

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत। - *ऋग्वेद.*
जिस प्रकार लोग छाननी से सत्तू को स्वच्छ करके प्रयोग करते हैं, वैसे ही बुद्धिमान् मनरूपी छाननी से पवित्र करते हुए वाणी का प्रयोग करते हैं।

सतां हि वाणी गुणमेव भाषते। - *किरात.*
सज्जनों की वाणी केवल गुणों का ही बखान करती है।

सत्यपूतां वदेद् वाचम्। - *मनु.*
सत्य से पवित्र हुई वाणी बोलें।

सुदुर्लभाः सर्वमनोरमा गिरः। - *किरात.*
ऐसे वचन दुर्लभ हैं, जो सबके मन को प्रिय लगें।

सुमङ्गलो भद्रवादी वदेह। - *ऋग्वेद.*
हे मनुष्य ! तू इस संसार में मंगलकारी और सुखप्रद वचनों को बोल।

स्पष्टवक्ता न वञ्चकः। - *चाण.*
स्पष्ट बात कहने वाला ठगता नहीं है।

स्फुटवक्ता न वञ्चकः। - *पञ्च.*
स्पष्टवादी धूर्त नहीं होता है।

हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः। - *किरात.*
हितकारी और मनोहारी वचन दुर्लभ होते हैं।

मौन

दर्दुरा यत्र वक्तारस्तत्र मौनं हि शोभनम्। - *सु.र.भा.*
जहाँ मेंढक वक्ता हों, वहाँ मौन ही अच्छा है।
मूर्खों के बीच चुप भली।

बलं मूर्खस्य मौनित्वम्।
चुप रहना मूर्ख का बल है।

मण्डूका यत्र वक्तारस्तत्र मौनं हि भूषणम्।
जहाँ मेंढक बोलने वाले हों, वहाँ चुप रहना ही श्रेयस्कर है।

मौनं गूहति मौढ्यं सदसि।
सभा में चुप बैठे रहने से मूर्खता छिपती है।

मौनं विधेयं सततं सुधीभिः। - *सु.र.भा.*
बुद्धिमानों को, जहाँ उनकी बात न चले, चुप ही रहना चाहिए।
एक चुप हज़ार को हरावे।

मौनं सम्मतिलक्षणम्।
चुप रहना सहमत होने का लक्षण है।

मौनं सर्वार्थसाधकम्। - *पञ्च.*
चुप रहने से सब काम सिद्ध होते हैं।
सबसे भली चुप।

मौने च कलहो नास्ति। - *चाण.*
चुप रहने से विवाद नहीं होता है।

वरं मौनं कार्यं न च वचनमुक्तं यदनृतम्। - *सु.र.भा.*
झूठ बोलने से चुप रहना अच्छा है।

वाग्जन्मवैफल्यमसह्यशल्यं गुणाधिके वस्तुनि मौनिता चेत्।
- *नैषध.*
अति गुणवान् वस्तु या व्यक्ति के विषय में चुप रहने से वाणी (जिह्वा) का होना व्यर्थ हो जाता है। यह बाण की वेदना के समान कष्टप्रद होता है।

विभूषणं मौनमपण्डितानाम्। - *भर्तृ.*
मौन मूर्खों का आभूषण है।

सत्यं यत् परदुःखाय तत्र मौनपरो भवेत्।
जो सत्य दूसरे को दुःखी करे, उसे न कहना चाहिए।
दिल दुखाने से चुप भली।

दर्प/मान

अगाधजलसञ्चारी न गर्वं याति रोहितः।
अङ्गुष्ठमात्रतोयेऽपि शफरी फरफरायते॥ - *पञ्च.*
अगाध जल में विचरण करता हुआ महामत्स्य रोहित अभिमान नहीं करता है। छोटी मछली अंगुष्ठमात्र जल में फड़फड़ाती है। बड़े लोग बड़ी बातों पर भी घमण्ड नहीं करते हैं, किन्तु छोटे लोग थोड़े में ही फूले नहीं समाते।

अतिदर्पे हता लङ्का।
अत्यन्त घमण्ड से लंका का विनाश हुआ।
घमण्डी का सर नीचा।

अभिभूतिभयादसूनतः सुखमुज्झन्ति न धाम मानिनः। - *किरात.*
मानी लोग अपमान के भय से प्राण को तो सुख से त्याग सकते हैं, परन्तु अपने मान तथा तेज को धक्का नहीं लगने देते हैं।

अल्पविद्यो महागर्वी। - *सु.र.भा.*
अल्पज्ञानी अत्यन्त घमण्डी होते हैं।
१. अधजल गगरी छलकत जाय।
२. छुद्र नदी भरि चलि इतराई।

उत्तमा मानमिच्छन्ति मानो हि महतां धनम्। - *चाण.*
उत्तम पुरुष केवल सम्मान को चाहते हैं; क्योंकि मान ही महापुरुषों का धन है।

जीवनं मानमूलं हि माने म्लाने कुतः सुखम्। - *सु.र.भा.*
जीवन की आधारशिला मान ही है, उसके न रहने पर सुख कहाँ हो सकता है ?
स्वाभिमान न छोड़िए, यही सयानी सीख।

दर्पाऽन्धेन बुधेन किम्।
उस विद्वान् से क्या लाभ, जो अभिमान में अंधा हो।

नान्यस्य गन्धमपि मानभृतः सहन्ते। - *शिशु.*
मानी लोग दूसरे के गर्व को नहीं सहते हैं।

नाहङ्कारात्परः शत्रुः।
अहंकार से बड़ा कोई शत्रु नहीं है।

पराभवस्यैतन्मुखं यदतिमानः।
अत्यन्त अभिमान पराजय का प्रवेश-द्वार है।

पराभवोऽप्युत्सव एव मानिनाम्। - *किरात.*
मानियों के लिए पराजय भी उत्साहवर्धक होती है।

परिम्लाने माने मरणमथवा दूरसरणम्।
मान के कुम्हला जाने पर मरना या दूर चले जाना अच्छा है। मानी के लिए और रास्ता ही क्या है ?

प्राणत्यागे क्षणं दुःखं मानभङ्गे दिने दिने। - *चाण.*
प्राणों को त्यागने में क्षणिक दुःख होता है, किन्तु मानहानि होने पर प्रतिदिन कष्ट होता है।

वरं हि मानिनो मृत्युर्न दैन्यं स्वजनाग्रतः। - *कथा.*
मानी की दृष्टि में मृत्यु अच्छी है, पर अपने लोगों के आगे दीनता नहीं।

सदाभिमानैकधना हि मानिनः। - *शिशु.*
मानी लोगों के लिए सदा आत्मगौरव ही धन होता है।

अपमान

अप्रकटीकृतशक्तिः शक्तोऽपि जनस्तिरस्क्रियां लभते। - *पञ्च.*
अपनी शक्ति को प्रकट न करने पर शक्तिशाली पुरुष भी दूसरों के द्वारा अपमानित हो जाता है।

अवज्ञात्रुटितं प्रेम नवीकर्तुं क ईश्वरः।
अनादर से जो प्रीति टूट जाती है, उसे पुनः स्थापित कर सकने में कौन समर्थ है ?

उन्नतो न सहते तिरस्क्रियाम्। - *किरात.*
ऊंचे चित्तवाले अपमान नहीं सहते हैं।

परिभवोऽरिभवो हि सुदुःसहः। - *शिशु.*
शत्रु के द्वारा उत्पन्न किया गया अपमान सहना कठिन है।

माने हानिः कुतः सुखम्।
मान में हानि हुई, तो सुख कहाँ ?

वरं मृत्युर्न पुनरपमानः।
मृत्यु अच्छी है, किन्तु अपमान नहीं।
अपमान से मौत भली।

सन्ततगमनादनादरो भवति। - *सु.र.भा.*
किसी के पास बार-बार जाने से अपमान होता है।
मान घटे नित के घर जाए।

सत्पुरुष

अङ्गीकृतं सुकृतिनः परिपालयन्ति। - *चौर.*
अच्छे लोग जिस बात को अपने ऊपर लेते हैं, उसका निर्वाह करते हैं।
प्राण जाय पर वचन न जाई।

अङ्गुलीदर्शनादेव विलीयन्ते मनस्विनः।
अच्छे पुरुष बदनामी के संकेत मात्र से मर जाते हैं।

अनुसृत्य सतां वर्त्म यत्स्वल्पमपि तद् बहु।
सन्मार्ग का अनुसरण करते हुए जो कुछ भी प्राप्त हो जाए, उसे बहुत समझना चाहिए।

अपकारिषु यः साधुः स साधुः सद्भिरुच्यते। - *पञ्च.*
अपना अहित करने वाले के साथ भी जो सद्व्यवहार करता है, उसे ही सज्जन 'साधु' कहते हैं।

अशक्तः सततं साधुः। - *चाण.*
जो असमर्थ है, वह सदा साधु ही लगता है।

आगमप्रधानानि सुलभपर्यवस्थानानि महापुरुषहृदयानि भवन्ति।
- *स्वप्न.*
महापुरुषों के हृदय शास्त्रों पर विश्वास करने के कारण आसानी से प्रकृतिस्थ हो जाते हैं।

कण्ठे सुधा वसति वै खलु सज्जनानाम्। - *सु.र.भा.*
सज्जनों के कण्ठ में निश्चय ही अमृत वास करता है।

कदापि सत्पुरुषाः शोकवास्तव्या न भवन्ति। - *अभिज्ञा.*
सत्पुरुष कभी भी शोक के पात्र नहीं होते हैं।

काले फलन्ति तीर्थानि सद्यः साधुसमागमः। - *चाण.*
तीर्थों के सेवन का फल समय आने पर मिलता है, किन्तु सज्जनों की संगति का फल तुरन्त मिलता है।

तथा चतुर्भिः पुरुषः परीक्ष्यते, त्यागेन शीलेन गुणेन कर्मणा। - *चाण.*
त्याग, शील, गुण एवं कर्म से पुरुष की परीक्षा होती है।

न चलति खलु वाक्यं सज्जनानां कदाचन।
सज्जन अपने वचन से डिगते नहीं हैं।

ननु प्रवातेऽपि निष्कम्पा गिरयः। - *अभिज्ञा.*
आंधी में भी पर्वत अडिग रहते हैं।
सत्पुरुष विपत्ति से नहीं घबराते हैं।

नारिकेलसमाकारा दृश्यन्ते हि सुहृज्जनाः। - *हितो.*
सज्जन नारियल के समान बाहर से कठोर, किन्तु भीतर से कोमल होते हैं।

निर्गुणेष्वपि सत्त्वेषु दयां कुर्वन्ति साधवः। - *हितो.*
साधुजन गुणहीन प्राणियों पर भी दया करते हैं।

नीचो वदति न कुरुते, न वदति सुजनः करोत्येव।
नीच लोग कहते हैं, करते नहीं; किन्तु अच्छे लोग कहते नहीं, करते हैं।
जो गरजते हैं, वे बरसते नहीं।

प्रारब्धमुत्तमजना न परित्यजन्ति। - *भर्तृ.*
उत्तम प्रकृति के लोग (बार-बार विघ्नों का प्रहार पड़ने पर भी) आरम्भ किए गए कार्य को नहीं छोड़ते हैं।

बहु कृत्वापि मन्यन्ते स्वल्पमेव महाशयाः। - *कथा.*
महान् अभिप्राय वाले सत्पुरुष बहुत उपकार करके भी थोड़ा ही मानते हैं।

ब्रुवते हि फलेन साधवो न तु कण्ठेन निजोपयोगिताम्। - *नैषध.*
अच्छे लोग किसी का कुछ उपकार मुंह से नहीं कहते, अपितु करके दिखलाते हैं।

मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्। - *समयो.*
महात्माओं के मन, वचन और कर्म में एकरूपता देखी जाती है।

यथा चित्तं तथा वाचो यथा वाचस्तथा क्रियाः।
चित्ते वाचि क्रियायाञ्च साधूनामेकरूपता ॥ - *विक्रमचरितम्*
जैसा चित्त में है, वैसा ही बोलते हैं। जैसा बोलते हैं, वैसा ही करते हैं। सत्पुरुषों के चित्त, वचन और कार्य-तीनों में एकरूपता होती है।

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि। - *उत्तर.*
लोकोत्तर व्यक्तियों के चित्त वज्र से भी कठोर और फूल से भी कोमल होते हैं।

वृत्तं हि महितं सताम्। - *कुमार.*
सज्जनों का व्यवहार और चरित्र श्लाघनीय होता है।

व्रताभिरक्षा हि सतामलङ्क्रिया। - *किरात.*
व्रत का पालन करना ही सज्जनों का आभूषण है।

शैले शैले न माणिक्यं मौक्तिकं न गजे गजे।
साधवो न हि सर्वत्र चन्दनं न वने वने ॥ - *चाण.*
हर पर्वत पर माणिक नहीं होता, हर गज में मुक्ता नहीं होती; साधुजन हर जगह नहीं मिलते और हर वन में चन्दन उत्पन्न नहीं होता।

सज्जनैकवसतिः कृतज्ञता।
कृतज्ञता केवल सज्जनों में बसती है।

सतां वै पादलग्नोऽपि व्यथयत्येव कण्टकः। - *शा.प.*
कांटा सज्जनों के पैर में चुभने पर उन्हें भी कष्ट ही पहुंचाता है।

सतां सद्भिः सङ्गः कथमपि हि पुण्येन भवति। - *उत्तर.*
सज्जनों का सज्जनों से संगम भी किसी बड़े पुण्य से होता है।

सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः। - *अभिज्ञा.*
किसी कार्य में सन्देह होने पर कर्तव्य-अकर्तव्य के निर्णय में सत्पुरुषों के अन्तःकरण की प्रवृत्तियां प्रमाण हुआ करती हैं।

सत्यस्य नावः सुकृतमपीरन्। - *ऋग्वेद.*
सत्य की नौकाएं सुकर्मा को पार लगाती हैं।

सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते। - *मालवि.*
अच्छे लोग परख कर अनेक में से एक को चुन लेते हैं।

सन्तः स्वयं परहितेषु कृताभियोगाः। - *भर्तृ.*
सज्जन स्वयं ही परोपकार के लिए सदा उद्यमशील रहते हैं।

सम्पत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता। - *पञ्च.*
बड़े लोग सम्पत्ति और विपत्ति में सदा एक भाव से ही रहते हैं।

साधूनां दुर्जनाद्भयम्। - *पञ्च.*
सज्जनों को दुर्जन से भय होता है।

दुष्ट

अकारणाविष्कृतवैरदारुणादसज्जनात्कस्य भयं न जायते।
बिना किसी कारण के घोर शत्रुता करने वाले दुर्जन से किसको भय नहीं होता है ?

अथ दुर्जनसंसर्गे पतिष्यति पतिष्यति।
दुर्जन का साथ करेगा, तो अवश्य गिरेगा।

अधमं बाधते भूयो दुःखावेगो न तूत्तमम्।
नीच जन दुःख के समय अधिक कष्ट उठाते हैं, उत्तम जन नहीं।

अपन्थानं तु गच्छन्तं सोदरोऽपि विमुञ्चति।
गलत मार्ग पर चलने वाले का साथ भाई भी छोड़ देता है।
बुरे का साथी कौन है ?

अवगतविद्यमपि त्यज दुष्टम्।
पढ़े-लिखे दुष्ट को भी त्याग देना चाहिए।

असाधुं साधुना जयेत्।
असाधु को साधुता से जीतें।

आत्मछिद्रं न पश्यति परछिद्रमेव पश्यति बालिशः। - *चाण.सू.*
दुष्ट दूसरों के ही दोष देखता है, अपने नहीं।

आर्जवं हि कुटिलेषु न नीतिः। - *नैषध.*
कुटिल व्यक्तियों के साथ सरलता नीति नहीं होती है।
घी सीधी अंगुली से नहीं निकलता है।

उष्णो दहति चाङ्गारः शीतः कृष्णायते करम्। - *हितो.*
जलते हुए अंगारे को पकड़ने से हाथ जलता है और ठण्डे से हाथ काला हो जाता है।
दुष्ट प्रत्येक स्थिति में दुष्टता ही करता है।

ऋतस्य पन्थां न तरन्ति दुष्कृतः। - *ऋग्वेद.*
दुष्कर्म करने वाले सत्य के पथ को पार नहीं कर पाते।

को वा दुर्जनदुर्गुणेषु पतितः क्षेमेण यातः पथि। - *चाण.*
कौन व्यक्ति ऐसा है, जो दुर्जनों की दुष्टता में फंसकर सकुशल पार पहुंचा है ?

खलः करोति दुर्वृत्तं तद्दिह फलति साधुषु।
दशाननोऽहरत् सीतां बन्धनं स्यात् महोदधेः ॥ - *हितो.*
दुष्ट दुराचरण करते हैं और सज्जन उसका फल भोगते हैं। रावण ने सीता का हरण किया जबकि समुद्र पर सेतुबंध बांधा गया।
लड़ें लोह पाहन दोऊ, बीच रुई जरि जाय।

खलेन मैत्री न चिरेण तिष्ठति।
खल के साथ मित्रता देर तक नहीं रहती।

दुर्जनः परिहर्तव्यो विद्ययालङ्कृतोऽपि सन्।
मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयङ्करः॥ – *भर्तृ./हितो.*
दुष्ट पुरुष को विद्या से विभूषित होने पर भी त्याग देना चाहिए। क्या मणि से विभूषित सर्प भयंकर नहीं होता ?

दुर्जनः प्रियवादी च नैतद् विश्वासकारणम्। – *हितो.*
प्रिय बोलने वाला दुर्जन विश्वसनीय नहीं हो जाता।

दुर्जनस्यार्जितं वित्तं भुज्यते राजतस्करैः। – *सु.र.भा.*
दुष्ट का धन राजा या चोर के द्वारा भोगा जाता है।

दुर्जनेन समं सख्यं प्रीतिं चापि न कारयेत्। – *हितो.*
दुर्जन के साथ न मित्रता करें और न प्रेम।

दुर्जनेषु च सर्पेषु वरं सर्पो न दुर्जनः ।
सर्पो दशति कालेन दुर्जनस्तु पदे पदे ॥ – *चाण.*
दुष्ट और साँप में साँप अच्छा है, दुष्ट नहीं। साँप तो एक ही बार डसता है, किन्तु दुष्ट तो पग-पग पर डसता है।

दुष्कृते मा सुगं भूत्। – *ऋग्वेद.*
दुष्कर्म करने वाले को स्वेच्छा से विचरण करने की अनुमति न हो।

न वाग्वादं शठैः कुर्यात्।
धूर्तों के साथ वाद-विवाद नहीं करना चाहिए।

न विना परवादेन रमते दुर्जनो जनः।
दुर्जन दूसरे की निन्दा के विना प्रसन्न नहीं रह सकता।

न विनीतं विश्वसेद् धूर्तम्।
धूर्त कितना भी विनीत दिखे, उसका विश्वास नहीं करना चाहिए।

निरीक्षते केलिवनं प्रविश्य क्रमेलकः कण्टकजालमेव।
– *विक्रमाङ्कदेवचरितम्*

उपवन में भी ऊंट कांटेदार झाड़ियों को ही खोजता है।
दुष्ट सदा दोष ही ढूंढ़ा करते हैं।

पयःपानं भुजङ्गानां केवलं विषवर्द्धनम्। - *पञ्च./हितो.*
सर्पों को दूध पिलाने से विष ही बढ़ता है।
जो तू सींचे दूध से, नीम न मीठी होय।

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः। - *भर्तृ.*
नीचजन विघ्न के भय से कार्य आरम्भ ही नहीं करते।

मक्षिका व्रणमिच्छन्ति।
मक्खी घाव को ही ढूंढ़ती रहती है।
दुष्ट सदा दोष ढूंढ़ता है।

मनस्यन्यद् वचस्यन्यत् कर्मण्यन्यद् दुरात्मनाम्। - *समयो.*
दुष्ट सोचते कुछ हैं, कहते कुछ हैं और करते कुछ हैं।

वरं शून्या शाला न च खलु वरो दुष्टवृषभः। - *हितो.*
सूनी गोशाला अच्छी, पर बिगड़ैल बैल नहीं।
दुष्ट के संग से अकेलापन अच्छा है।

विषकुम्भं पयोमुखम्। - *हितो.*
दुष्ट ऊपर से मीठा और अन्दर से जहर भरे घड़े जैसा होता है।
१. मुंह में राम बगल में छुरी।
२. ऊपर से पानी देना नीचे से जड़ काटना।

शठे शाठ्यं समाचरेत्।
दुष्ट के साथ दुष्टता की जानी चाहिए।
१. जैसे को तैसा।
२. ईंट का जवाब पत्थर से।

शाम्येत् प्रत्यपकारेण नोपकारेण दुर्जनः। - *कुमार.*
दुष्ट को उपकार से नहीं, अपकार से शान्त करना चाहिए।
लात के देवता बात से नहीं मानते।

समुन्नयन् भूतिमनार्यसङ्गमाद्वरं विरोधोऽपि समं महात्मभिः।
– *किरात.*

नीच व्यक्ति के सम्पर्क से ऐश्वर्य प्राप्त करने की अपेक्षा महात्माओं से वैर करना कहीं अधिक अच्छा है।

सर्पः क्रूरः खलः क्रूरः सर्पात्क्रूरतरः खलः।
मन्त्रेण शाम्यते सर्पो न खलः शाम्यते कदा ॥ – *चाण.*

साँप निष्ठुर है, खल निष्ठुर है किन्तु खल साँप से अधिक निष्ठुर है, क्योंकि साँप तो मन्त्र से शान्त हो जाता है, जबकि खल किसी तरह शान्त नहीं होता।

विद्वान्

अकुलीनोऽपि शास्त्रज्ञो दैवतैरपि पूज्यते। – *हितो.*

अकुलीन भी यदि शास्त्रों को जानने वाला है, तो वह देवताओं के द्वारा पूजा जाता है।

अजरामरवत् प्राज्ञो विद्यामर्थञ्च चिन्तयेत्। – *हितो.*

अपने को वृद्धावस्था और मृत्यु से परे मानकर बुद्धिमान् को विद्या और धन का चिन्तन करना चाहिए।

अनाश्रया न शोभन्ते पण्डिता वनिता लता। – *कथा.*

पण्डित, स्त्री और लता किसी पर आश्रित हुए विना शोभित नहीं होते।

अनुक्तमप्यूहति पण्डितो जनः। – *हितो./पञ्च.*

विद्वान् व्यक्ति उस बात को भी ताड़ लेता है, जो उससे नहीं कही गई।

अप्यूहन्ति मनो धीरास्तस्माद्रहसि मन्त्रयेत्।

बुद्धिमान् लोग मन की बात भी जान लेते हैं, इसलिए एकान्त में सलाह करनी चाहिए।

आकारेणैव चतुरास्तर्कयन्ति परेङ्गितम्। – *हितो.*

चतुर लोग आकृति से ही दूसरे का आशय समझ जाते हैं।

उपायं चिन्तयेत्प्राज्ञस्तथाऽपायं च चिन्तयेत्। - *पञ्च./हितो.*
बुद्धिमान् व्यक्ति को चाहिए कि किसी कार्य को करने के उपाय के साथ-साथ उसके अपाय (कार्य की हानि) को भी सोच ले।

काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्। - *हितो.*
काव्य-शास्त्र के पठन और रसास्वादन में बुद्धिमान् अपना समय बिताते हैं।

किमज्ञेयं हि धीमताम्। - *कथा.*
ऐसा क्या है, जिसे बुद्धिमान् न जान सकें?

को विदेशः सविद्यानाम्। - *पञ्च./चाण.*
विद्वान् के लिए क्या परदेश ?

झटिति पराशयवेदिनो हि विज्ञाः। - *नैषध.*
विद्वान् शीघ्र ही दूसरे का आशय जान लेते हैं।

न खलु धीमतां कश्चिदविषयो नाम। - *अभिज्ञा.*
बुद्धिमान् के लिए कुछ भी अज्ञात नहीं होता।

न स्वल्पस्य कृते भूरि नाशयेन्मतिमान्नरः।
बुद्धिमान् थोड़े के लिए अधिक को नष्ट नहीं होने देता।

न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः। - *भर्तृ.*
बुद्धिमान् न्याय के मार्ग से जरा भी नहीं हटते।

पण्डिते च गुणाः सर्वे मूर्खे दोषा हि केवलम्।
तस्मान्मूर्खसहस्त्रेषु प्राज्ञ एको विशिष्यते ॥ - *चाण.*
विद्वान् में सब गुण होते हैं और मूर्ख में केवल दोष। इसीलिए हज़ार मूर्खों से एक विद्वान् बढ़कर है।

पण्डितो हि वरं शत्रुर्न मूर्खो हितकारकः। - *पञ्च.*
विद्वान् अपना शत्रु भी हो तो अच्छा है, किन्तु मूर्ख हितैषी ठीक नहीं है।
दाना दुश्मन अच्छा, नादान दोस्त नहीं।

बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः। - *अभिज्ञा.*
अत्यधिक शिक्षित जनों का भी चित्त अपने ऊपर अविश्वासयुक्त होता है।

यः क्रियावान् स पण्डितः। - *सु.र.भा.*
जो उपदेश के अनुसार आचरण करे, वही पण्डित है।

यस्यार्थः स च पण्डितः। - *चाण.*
जिसके पास धन है, वही पण्डित है।

विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः।
- *कुमार.*
यथार्थ में धीर पुरुष तो वे ही हैं, जिनका चित्त विकार उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों में भी अस्थिर नहीं होता।

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥ - *गीता*
विद्या और विनययुक्त ब्रह्मवादी ब्राह्मण, गौ, हाथी, कुत्ते और नीच व्यक्ति को पण्डितजन समभाव से देखते हैं। वे सबके साथ समान व्यवहार करते हैं।

विद्वानेव विजानाति विद्वज्जनपरिश्रमम्। - *कुवलयानन्दः*
विद्वान् ही विद्वान् लोगों के परिश्रम को जानता है।

विद्वान् प्रशस्यते लोके विद्वान् सर्वत्र गौरवम्। - *चाण.*
संसार में विद्वान् सब जगह प्रशंसित होता है और गौरव प्राप्त करता है।

सभारत्नं विद्वान्। - *प्रसङ्गा.*
विद्वान् सभा का रत्न होता है।

सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धं त्यजति पण्डितः। - *पञ्च.*
सम्पूर्ण का नाश उपस्थित होने पर बुद्धिमान् आधे को छोड़ देता है।
१. सब धन जाता देखिए तो आधा दीजे बांट।
२. भागते चोर की लंगोटी भली।

स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते। - *पञ्च.*
राजा अपने देश में पूजा जाता हैं, किन्तु विद्वान् की पूजा सर्वत्र होती है।

मूर्ख

अपण्डितानां सङ्गोऽभ्युदयविभङ्गः।
मूर्खों का साथ कल्याण का नाशक होता है।

अर्धो घटो घोषमुपैति नूनम्।
छलकता आधा भरा घड़ा अवश्य शब्द करता है।
थोथा चना बाजे घना।

अशुभं वाक्यमादत्ते पुरीषमिव शूकरः। - *महा.*
जैसे सुअर विष्ठा की ओर दौड़ता है, वैसे मूर्ख अशुभ वचनों को ही ग्रहण करता है।

कष्टं खलु मूर्खत्वम्। - *चाण.*
मूर्खता निश्चय ही कष्ट देती है।

तावच्च शोभते मूर्खो यावत्किञ्चिन्न भाषते। - *हितो.*
मूर्ख तभी तक शोभा पाता है, जब तक कुछ बोलता नहीं।

दूरतः शोभते मूर्खो लम्बशाटपटावृतः।
लम्बी धोती और दुपट्टा पहने मूर्ख दूर से ही शोभा देता है, निकट से नहीं।

न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बको यथा। - *हितो./चाण.*
मूर्ख सभा में उसी प्रकार सुशोभित नहीं होता है, जैसे हंसों के बीच में बगुला।

निरक्षरभट्टाचार्यः।
बिना पढ़ा लिखा भट्टाचार्य।
काला अक्षर भैंस बराबर।

पण्डितोऽपि वरं शत्रुः न मूर्खो हितकारकः। - *पञ्च.*
मूर्ख हितैषी की तुलना में विद्वान् शत्रु भी अच्छा है।
नीम हकीम खतरा-ए-जान।

प्रबलतमसामेवंप्रायाः शुभेषु हि वृत्तयः ।
स्रजमपि शिरस्यन्धः क्षिप्तां धुनोत्यहिशङ्कया ॥ - *अभिज्ञा.*
मंगलप्रद वस्तुओं के विषय में भी प्रबल तमोगुण वालों की प्रवृत्तियां इसी प्रकार हिचकपूर्वक होती हैं। अन्धा व्यक्ति मस्तक पर फेंकी गई फूलों की माला को भी सर्प की शंका से झटक कर गिरा देता है।

प्रयोजनमनुद्दिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्त्तते।
मूर्ख व्यक्ति भी विना प्रयोजन के किसी काम में प्रवृत्त नहीं होता।
जहाँ नहीं लाभ, वहाँ क्या काम ?

मन्दोऽप्यविरतोद्योगः सदा विजयभाग् भवेत्।
मन्द मनुष्य भी निरन्तर प्रयास करते रहने से विजयी होता है।
करत करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान।

मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः। - *मालवि.*
मूढ़ दूसरों की बुद्धि से चलते हैं।
मूर्ख भेढ़चाल चलते हैं।

मूर्खस्य नास्त्यौषधम्। - *भर्तृ.*
मूर्ख की मूर्खता दूर करने के लिए कोई ओषधि नहीं होती।

मूर्खस्य हृदयं शून्यम्। - *चाण.*
मूर्ख का हृदय बिलकुल शून्य होता है।
मूरख हृदय न चेत, जो गुरु मिलहिं विरिंचि सम।

मूर्खेण किं भाषणम्।
मूर्ख से क्या बातचीत करना ?

मूर्खैर्हि सङ्गः कस्यास्ति शर्मणे। - *कथा.*
मूर्खों का साथ क्या किसी के लिए सुखदायी हुआ है ? वह तो दुःख ही उत्पन्न करता है।

मृत्युर्यावत् क्लेशमाप्नोति मूर्खः।
मूर्ख मरने तक क्लेश प्राप्त करता रहता है।

यत्र विद्वज्जनो नास्ति श्लाघ्यस्तत्राल्पधीरपि। - *हितो.*
जहाँ विद्वान् नहीं होता, वहाँ कम बुद्धि वाला मनुष्य भी प्रशंसा के योग्य हो जाता है।
अंधों में काना राजा।

यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किम्। - *हितो./चाण.*
जिसकी अपनी बुद्धि नहीं है, उसका शास्त्र क्या कल्याण कर सकता है ?
भैंस के आगे बीन बजे, भैंस खड़ी पगुराय।

वरं पर्वतदुर्गेषु भ्रान्तं वनचरैः सह।
न मूर्खजनसम्पर्कः सुरेन्द्रभवनेष्वपि।। - *भर्तृ.*
पहाड़ों के दुर्गम स्थान में जंगलियों के साथ घूमना अच्छा है, परन्तु मूर्खों के साथ इन्द्र के महलों में भी रहना अच्छा नहीं।

विद्वान्त्सर्वजनेषु पूजिततनुर्मूर्खस्य नान्या गतिः। - *सु.र.भा.*
विद्वान् का सभी लोगों में आदर होता है, अतः वह कहीं भी जा सकता है; पर मूर्ख की दूसरी गति नहीं, वह कहाँ जाए ?
कूपमण्डूक जैसा हाल।

विवेकरहितः खलु पक्षपाती।
विवेक से हीन व्यक्ति पक्षपात करता है।
अन्धा बाँटे रेवड़ी फिर फिर अपनों देय।

व्यसनेन तु मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा। - *हितो.*
मूर्खों का समय विषय-भोग, निद्रा या कलह में ही व्यतीत होता है।

स्वार्थभ्रंशो हि मूर्खता।
अपने हित-अहित की बुद्धि का न होना ही मूर्खता है।



समाजपरक

गृह/परिवार

अनुकूले हि दाम्पत्ये प्रतिकूलं न किञ्चन।
जहाँ पति और पत्नी एक दूसरे के अनुकूल हों, वहाँ कुछ भी प्रतिकूल नहीं होता है।

एको वासः पत्तने वा वने वा। - *भर्तृ.*
निवासस्थान एक ही होना चाहिए, चाहे नगर में हो, या वन में।

गृही गृहस्थोऽपि तदश्नुते फलं यत्तीर्थसेवाभिरवाप्यते जनैः।
तत्तस्य तीर्थं गृहमेव कीर्त्तितम् ॥ - *शङ्करदिग्विजयम्*
गृहस्थ व्यक्ति अपने घर में ही रहकर वह फल प्राप्त कर लेता है जो और लोग तीर्थ-सेवा से पाते हैं, इसलिए घर ही उसका 'तीर्थ' कहा गया है।

गृहे चेन्मधु विन्देत किमर्थं पर्वतं व्रजेत्।
यदि घर के कोने में ही मधु मिल जाए, जो पर्वत पर क्यों जाएं ?
घर में जो शहद मिले तो काहे वन को जाएं।

गृहे या पुण्यनिष्पत्तिः सा यात्राभ्रमतः कुतः। - *कथा.*
घर में बैठे जो पुण्य का काम बन पड़ता है, वह दर-दर घूमने से कहाँ ?

धिग्गृहं गृहिणीशून्यम्। - *सु.र.भा.*
विना गृहिणी के घर को धिक्कार है।

न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते।
गृहं हि गृहिणीहीनमरण्यसदृशं मतम्॥ - *पञ्च.*
मकान को 'घर' नहीं कहते हैं, अपितु गृहिणी को ही 'घर' कहते हैं।

गृहिणी के विना घर वन के समान होता है।
बिन घरनी घर भूत का डेरा।

नाधार्मिके वसेद् ग्रामे। - *मनु.*
अधार्मिक गांव में वास नहीं करना चाहिए।

प्राणिनां हि निकृष्टापि जन्मभूमिः परा प्रिया। - *कथा.*
निकृष्ट होने पर भी अपनी जन्मभूमि सभी प्राणियों को अत्यन्त प्रिय होती है।
जो सुख अपने घर में, वह न किसी के दर में।

बहुवृत्तान्तानि राजकुलानि नाम। - *प्रतिमा.*
राजकुलों या प्रभुवर्ग के घरों में बहुत प्रकार की घटनाएं होती रहती हैं।

भार्याहीनं गृहस्थस्य शून्यमेव गृहं मतम्। - *सु.र.भा.*
विना पत्नी के गृहस्थ का घर शून्य ही माना गया है।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः। - *मनु.*
जिस घर में नारियों का आदर होता है, उस घर में देवता निवास करते हैं।

वृक्षमूलेऽपि दयिता यत्र तिष्ठति तद्गृहम्। - *पञ्च.*
वृक्ष के नीचे भी जहाँ पत्नी निवास करती हो, वह घर है।

शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम्। - *मनु.*
जिस घर में स्त्रियां दुःखी रहती हैं, वह कुल शीघ्र नष्ट हो जाता है।

सत्स्त्रिया रक्ष्यते गृहम्। - *चाण.*
सच्चरित्रा स्त्री से घर की रक्षा होती है।

ससर्पे च गृहे वासः कथं स्यात्तस्य निर्वृतिः। - *पञ्च.*
सर्पयुक्त घर में जिस व्यक्ति का निवास हो, उसे भला कैसे सुख की प्राप्ति हो सकती है ?

माता-पिता

ऋणकर्ता पिता शत्रुः। - *हितो./चाण.*
ऋण करने वाला पिता (पुत्र का) शत्रु है।

कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।
कुपुत्र चाहे हो जाए, पर कभी भी कुमाता (पुत्र का अनिष्ट करने वाली माता) नहीं होती।

गुरूणां माता गरीयसी।
सभी बुजुर्गों में मां सबसे बड़ी है।

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।
जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी बढ़कर हैं।

जनिता चोपनेता च यस्तु विद्यां प्रयच्छति ।
अन्नदाता भयत्राता पञ्चैते पितरः स्मृताः।। - *पञ्च./चाण.*
ये पांच पिता माने गए हैं – पैदा करने वाला, उपनयन संस्कार करने वाला, विद्या प्रदान करने वाला, अन्न देने वाला और भय से रक्षा करने वाला।

द्यौः पिता पृथिवी माता। - *अथर्व.*
द्युलोक पिता है और पृथिवी माता है।

धन्यास्तदङ्गरजसा मलिनीभवन्ति। - *अभिज्ञा.*
भाग्यशाली माता-पिता ही बच्चों के अंगों में लगी हुई धूल से मलिन होते हैं।

पिता मूर्तिः प्रजापतेः। माता पृथिव्याः मूर्तिः। - *मनु.*
पिता सृष्टिकर्ता ब्रह्मा की मूर्ति है और माता पृथिवी की।

पितुर्दशगुणा माता गौरवेणातिरिच्यते। - *मनु.*
माता गौरव में पिता से दस गुना अधिक है।

पितृदोषेण मूर्खता।
पुत्र में मूर्खता पिता के दोष से होती है।

माता किल मनुष्याणां दैवतानां च दैवतम्। - *मध्यम.*
माता न केवल मनुष्यों की अपितु देवताओं की भी देवता है।

माता परं दैवतम्।
माता उत्तम देवता है।

मातापितृभ्यां शप्तः सन्न जातु सुखमश्नुते। - *कथा.*
माता-पिता से शापित होकर सन्तान सुख नहीं पाती।

माता पृथिवी महीयम्। - *ऋग्वेद.*
यह विशाल पृथिवी हमारी माता है।

माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः। - *अथर्व.*
पृथिवी मेरी माता है और मैं उसका पुत्र हूँ।

माता मित्रं पिता चेति स्वभावात्त्रितयं हितम्।
कार्यकारणतश्चान्ये भवन्ति हितबुद्धयः ॥ - *हितो.*
माता, पिता और मित्र स्वभाव से ही हितचिन्तक होते हैं। अन्य लोग किसी कार्य या प्रयोजन से हित चाहने वाले होते हैं।

माता यस्य गृहे नास्ति भार्या च प्रियवादिनी ।
अरण्यं तेन गन्तव्यं यथारण्यं तथा गृहम् ॥ - *पञ्च.*
जिस घर में मां और प्रिय बोलने वाली पत्नी न हो - उसे वन में चले जाना चाहिए, क्योंकि उसके लिए जैसा घर वैसा वन।

माता शत्रुः पिता वैरी याभ्यां बाला न पाठिताः। - *हितो./चाण.*
वे माता और पिता बच्चों के शत्रु हैं, जो उनको नहीं पढ़ाते।

मातासमं नास्ति शरीरपोषणम्।
मां के समान शरीर को पुष्ट करने वाला दूसरा नहीं है।

मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। - *तैत्ति. उप.*
तुम माता में देवबुद्धि रखो। तुम पिता में देवबुद्धि रखो।

मातृवत्परदारेषु परद्रव्येषु लोष्टवत् ।
आत्मवत्सर्वभूतेषु यः पश्यति स पश्यति॥ - *हितो.*
पराई स्त्री को माता, पराये धन को मिट्टी और सबको अपने समान जो देखता है, वही वस्तुतः देखता है।

मातेव रक्षति पितेव हिते नियुङ्क्ते। - *भोज.*
विद्या मां के समान रक्षा करती है और पिता के समान हित में लगाती है।

राजपत्नी गुरोः पत्नी भ्रातृपत्नी तथैव च ।
पत्नीमाता स्वमाता च पञ्चैता मातरः स्मृताः ॥ - *चाण.*
राजा की पत्नी, गुरु की पत्नी, बड़े भाई की पत्नी, पत्नी की माता और अपनी माता—ये पांच माताएं कही जाती हैं।

शरीरकृत् प्राणदाता यस्य चान्नानि भुज्यते ।
क्रमेणैते त्रयोऽप्युक्ताः पितरो धर्मशासने ॥ - *महा.*
धर्म के अनुसार तीन प्रकार के व्यक्ति पिता कहलाने के अधिकारी हैं—जन्मदाता, प्राणदाता और अन्नदाता।

सर्वावस्थासु माता भर्तव्या। - *चाण. सू.*
सभी अवस्थाओं में माता का भरण-पोषण करें।

सा नो भूमिर्वि सृजतां माता पुत्राय मे पयः। - *अथर्व.*
जैसे माता अपने पुत्र को दूध पिलाती है, वैसे ही यह हमारी मातृभूमि हम सबके लिए विविध रसों की सृष्टि करे।

पुत्र

अपत्यमन्योन्यसंश्लेषणं पित्रोः।
सन्तान माता-पिता के बन्धन की गाँठ है।

अपुत्रस्य गृहं शून्यम्। - *चाण.*
जिसके पुत्र नहीं, उसका घर सूना है।
सुत बिन सूना गेह।

आत्मा वै जायते पुत्रः।
पुत्र के रूप में अपना ही जन्म होता है।

एकेनापि सुपुत्रेण सिंही स्वपिति निर्भयम् ।
सहैव दशभिः पुत्रैर्भारं वहति रासभी ॥ - *सु.र.भा.*
एक योग्य सन्तान (पुत्र) होने पर भी शेरनी निडर होकर सोती है,
जबकि दस सन्तानों के साथ गदही भार ही ढोती है।

एकेनैव कुपुत्रेण मलिनं जायते कुलम्।
एक अयोग्य सन्तान होने से सारा कुल मलिन हो जाता है।
एक मछली सारे तालाब को गंदा करती है।

कः सूनुर्विनयं विना। - *सु.र.भा.*
वह पुत्र ही क्या, जो विनम्र न हो ?

कष्टं खल्वनपत्यता। - *अभिज्ञा.*
निश्चय ही सन्तान न होना बहुत कष्टकारक है।

कुपुत्रेण कुलं नष्टम्। - *सु.र.भा.*
कुपुत्र से कुल का नाश होता है।
डूबा वंश कबीर का, उपजा पूत कमाल।

कोऽर्थः पुत्रेण जातेन यो न विद्वान् न भक्तिमान्। - *पञ्च./चाण.*
उस पुत्र के पैदा होने से क्या लाभ, जो न विद्वान् है और न ही भक्तिमान्।

न चापत्यसमः स्नेही। - *समयो.*
सन्तान के समान कोई दूसरा स्नेहपात्र नहीं है।

न पुत्रसंस्पर्शात्परं सुखम्।
पुत्र के स्पर्श से बड़ा कोई सुख नहीं है।

पराजयं पुत्रतोऽन्विच्छेत्।
पुत्र से पराजय की इच्छा करे।

पुत्रगात्रस्य संस्पर्शश्चन्दनादतिरिच्यते। - *पञ्च.*
पुत्र के शरीर का स्पर्श चन्दन से भी बढ़कर शीतल और आनन्ददायक होता है।

पुत्रः पिण्डप्रयोजनः। - *चाण.*
(पिता को) पिण्ड देने के लिए पुत्र की आवश्यकता है।

पुत्रः शत्रुरपण्डितः। - *हितो./चाण.*
मूर्ख पुत्र शत्रु के समान है।

पुत्रं विद्यासु योजयेत्। - *चाण.*
पुत्र को विद्याध्ययन में लगाएं।

पुत्रहीनं गृहं शून्यम्। - *चाण.*
पुत्र के विना घर सूना है।

पुत्रादपि भयं यत्र तत्र सौख्यं हि दुर्लभम्। - *सु.र.भा.*
जहाँ पुत्र से भी भय है, वहाँ कैसा सुख ?

पुत्रार्पितप्रभुत्वेऽभूद् धृतराष्ट्रो तृणोपमः।
पुत्र को अपना प्रभुत्व सौंपकर धृतराष्ट्र तिनके के बराबर हो गए।

पुत्रोत्कर्षः पित्रोर्महिमा।
पुत्र की उन्नति में माता-पिता की महिमा है।

पुत्रोत्सवे माद्यति को न हर्षात्। - *कुमार.*
पुत्र के जन्मोत्सव पर कौन आनन्द से मतवाला नहीं हो जाता है ?

यथा पिता तथा पुत्रः।
जैसा पिता वैसा पुत्र।
बेटा बाप पर जाता है।

यावज्जीवं जडो दहेत्। - *चाण.*
मूर्ख पुत्र जीवनभर दुःख देता है।

लालनाद् बहवो दोषास्ताडनाद् बहवो गुणाः।
तस्मात्पुत्रञ्च शिष्यञ्च ताडयेन्न तु लालयेत्॥ - *चाण.*
प्यार करने में बहुत से दोष हैं और ताड़ना करने में बहुत से गुण हैं। इसलिए पुत्र और शिष्य की ताड़ना करें, लालना नहीं।

लालयेत्पञ्चवर्षाणि दशवर्षाणि ताडयेत्।
प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत् ॥ - *चाण.*
पांच वर्ष की अवस्था तक पुत्र को प्यार करें। दस वर्ष की अवस्था तक उसकी ताड़ना करें। जब वह सोलह वर्ष का हो जाए, तब उसके साथ मित्र सा व्यवहार करें।

वरमेको गुणी पुत्रो न च मूर्खशतान्यपि।
एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति न च तारागणोऽपि च॥ - *हितो.*
एक गुणवान् पुत्र अच्छा है, सौ मूर्ख पुत्र नहीं। एक चन्द्रमा अन्धकार को दूर करता है, न कि ताराओं का समूह।

स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम्। - *भर्तृ./हितो.*
वास्तव में उसी सन्तान का जन्म लेना सार्थक है, जिससे वंश की उन्नति हो।

स पुत्रो यस्तु भक्तिमान्। - *पञ्च.*
सच्चा पुत्र वही है, जो पिता का आज्ञाकारी हो।

सुपुत्रः कुलदीपकः।
सपूत कुल का दीपक होता है।

पुत्री

अर्थो हि कन्या परकीय एव। - *अभिज्ञा.*
कन्या वस्तुतः पराया ही धन है।
कन्या पराया धन।

अशोच्या हि पितुः कन्या सद्भर्तृप्रतिपादिता। - *कुमार.*
उपयुक्त वर के साथ कन्या का विवाह कर देने के पश्चात् पिता को कभी उसकी चिन्ता नहीं होती।

कन्या नाम महद् दुःखं धिगहो महतामपि। - *कथा.*
बड़े लोगों को भी कन्या दुःखदायी होती है।

कन्या पितुर्हि सततं बहु चिन्तनीयम्। - *अवि.*
सचमुच कन्या के पिता को बहुत चिन्ता करनी पड़ती है।

कन्यापितृत्वं खलु नाम कष्टम्। - *पञ्च.*
सचमुच कन्या का पिता होना कष्टकारक है।

कन्यापितृत्वं बहु वन्दनीयम्। - *अवि.*
कन्या का पिता होना सौभाग्य की बात है।

दुरतिक्रमा दुहितरो विपदः। - *पञ्च.*
कन्यारूपी विपत्ति मनुष्य के लिए दुर्लङ्घ्य है।

दुहिता दूरे हिता। - *निरुक्तम्*
दुहिता दूर से ही हितकारक होती है।
जितनी दूर ब्याही जाए, उतना अच्छा।

शतपुत्रसमा कन्या।
कन्या सौ पुत्रों के बराबर है।

पति

इहामुत्र च नारीणां परमा हि गतिः पतिः। - *कथा.*
इस लोक में और परलोक में स्त्रियों के लिए परमगति 'पति' ही है।

तुष्टे भर्तरि नारीणां तुष्टाः स्युः सर्वदेवताः। - *पञ्च.*
पति के प्रसन्न होने पर स्त्री के सभी देवता स्वतः प्रसन्न हो जाते हैं।

नारीणां भूषणं पतिः। - *सु.र.भा.*
स्त्रियों की शोभा पति है।

पतिरेव गुरुः स्त्रीणाम्। - *चाण.*
पति ही स्त्रियों का गुरु होता है।

पतिः सतीनां परमं हि दैवतम्। - *कथा.*
पति ही सती स्त्रियों का परम देवता है।

भर्ता देवो गुरुर्भर्ता भर्ता तीर्थव्रतानि च।
तस्मात्सर्वं परित्यज्य पतिमेकं भजेत्सती॥ - *सु.र.भा.*
पति ही देवता है, पति ही गुरु है, पति ही तीर्थ और व्रत है। इसलिए सती स्त्री को चाहिए कि वह ये सब छोड़कर पति की ही सेवा करे।

भर्ता नाम परं नार्याः शोभनं भूषणादपि। - *रामा.*
निश्चय ही पति नारी के लिए आभूषणों से भी अधिक शोभा का हेतु है।

भर्तारं हि विना नान्यः सतीनामस्ति बान्धवाः। - *कथा.*
सती स्त्रियों के लिए पति के अतिरिक्त दूसरा कोई बन्धु नहीं है।

भर्ता हि शरणं स्त्रियाः।
पति ही स्त्री की शरण है।

भर्तुर्मार्गानुसरणं स्त्रीणां च परमं व्रतम्। - *कथा.*
पति के अनुसार चलना स्त्रियों का श्रेष्ठ व्रत है।

पत्नी

अनिर्वर्णनीयं परकलत्रम्। - *अभिज्ञा.*
दूसरे की स्त्री को ध्यान से देखना उचित नहीं है।

अविनीता रिपुर्भार्या। - *हितो./चाण.*
विनम्रता से रहित भार्या शत्रु है।

उपपन्ना हि दारेषु प्रभुता सर्वतोमुखी। - *अभिज्ञा.*
पत्नी पर पति की सब तरह की प्रभुता मानी गयी है।

गृहा वै पत्न्यै प्रतिष्ठा। - *शत.ब्रा.*
घर ही पत्नी की प्रतिष्ठा है।

जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम्। - *अथर्व.*
पत्नी पति के प्रति मधुर और शांति प्रदान करने वाली वाणी बोले।

न भार्यायाः परं सुखम्। - *सु.र.भा.*
स्त्री से बढ़कर सुख नहीं है।

नास्ति भार्यासमो बन्धुर्नास्ति भार्यासमा गतिः ।
नास्ति भार्यासमो लोके सहायो धर्मसङ्ग्रहे ॥ - *महा.*
पति के लिए पत्नी के समान कोई बन्धु नहीं है, पत्नी के समान कोई गति नहीं है। इस लोक में धर्म-संग्रह के लिए पत्नी के समान कोई सहायक भी नहीं है।

पतिव्रतानां नाकस्मात्पतन्त्यश्रूणि भूतले। - *रामा.*
पतिव्रता स्त्रियों के आंसू पृथिवी पर किसी अनर्थरूप कारण के विना नहीं गिरते।

पतिशुश्रूषा भार्याभूषा।
पति की सेवा स्त्री की शोभा है।

पुत्रप्रयोजना दाराः। - *सु.र.भा.*
पत्नी का प्रयोजन पुत्र-प्राप्ति के लिए है।

प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता। - *कुमार.*
सुन्दरता प्रिय को प्रसन्न करने पर ही सार्थक है।
जिसे प्रिय चाहे, वही सुहागिन।

भर्तृनाथा हि नार्यः। - *प्रतिमा.*
स्त्रियों का पति ही सब कुछ होता है।

भार्या मित्रं गृहेषु च। - *चाण.*
भार्या घर में मित्र है।

भार्या रूपवती शत्रुः। - *हितो.*
रूपवती भार्या शत्रु है।

या प्रसूते सा भार्या।
सुन्दर सन्तान को जन्म देने वाली ही भार्या है।

रतिपुत्रफला दाराः। - *पञ्च.*
आनन्द और पुत्र-प्राप्ति के लिए पत्नी है।

सा भार्या यत्र निर्वृतिः। - *पञ्च./चाण.*
वही पत्नी है, जिससे सुख मिले।

सा भार्या या प्रजावती। - *हितो.*
जो सन्तानवती हो, वही भार्या है।

सा भार्या या शुचिर्दक्षा सा भार्या या पतिव्रता।
सा भार्या या पतिप्रीता सा भार्या सत्यवादिनी॥ - *चाण.*
पत्नी वही है जो पवित्र और कुशल हो। पत्नी वही है जो पतिव्रता हो।
पत्नी वही है जिसको पति प्रेम करे। पत्नी वही है जो सत्य बोलती हो।

अतिथि, भाई आदि

अतिथिदेवो भव। - *तैत्ति.उप.*
अतिथि में देवबुद्धि रखो।

अनभिज्ञो गुणानां यो न भृत्यैरनुगम्यते। - *पञ्च.*
अनुचर उस व्यक्ति का साथ नहीं देते, जो गुणवान् के गुणों को नहीं पहचानता।

का चिन्ता बन्धुहीनस्य।
जिसका कोई सम्बन्धी नहीं, उसे क्या चिन्ता ?
आगे नाथ न पीछे पगहा, सबसे भला कुम्हार का गदहा।

गृहे वसतु नो अतिथिः। - *अथर्व.*
हमारे घर में अतिथि निवास करे।

जामाता दशमो ग्रहः। - *सु.र.भा.*
दामाद दसवाँ ग्रह है। (उपहास में कहा गया है।)

ज्येष्ठो भ्राता पितृसमः। - *मध्यम.*
बड़ा भाई पिता के समान होता है।

न भृत्यदूषणीया राजानः। - *अवि.*
सेवक को राजा की आलोचना नहीं करनी चाहिए।

पूजनीयो यथायोग्यं सर्वदेवमयोऽतिथिः। - *हितो.*
अतिथि सभी देवताओं का रूप होता है, अतः उसकी योग्यता के अनुसार पूजा होनी चाहिए।

भाग्येनैव हि लभ्यते पुनरसौ सर्वोत्तमः सेवकः। - *सु.र.भा.*
सबसे अच्छा सेवक भाग्य से ही मिलता है।

भ्राता स्वो मूर्तिरात्मनः। - *मनु.*
भाई स्वयं अपनी ही मूर्ति है।

यथाशक्त्यतिथेः पूजा धर्मो हि गृहमेधिनाम्। - *कथा.*
अपनी शक्ति के अनुसार अतिथि का सत्कार करना गृहस्थ का धर्म है।

यो यस्याभिमतः स तस्य निकटे दूरेऽपि सन्वल्लभः। - *सु.र.भा.*
जो जिसे पसन्द है, वह उसके निकट है। वह दूर होने पर भी प्रिय होता है।

श्यालको गृहनाशाय, श्यालको बुद्धिदायकः। - *चाण.*
जहाँ साला परामर्श देने वाला हो, वहाँ घर बिगड़ जाता है।

स भृत्यो यो विधेयज्ञः। - *पञ्च.*
सच्चा सेवक वही है, जो अपने कर्तव्य को समझे।

सर्वनाशाय मातुलः। - *सु.र.भा.*
मामा (के दखल) से घर का नाश होता है।

सर्वस्याभ्यागतो गुरुः। - *चाण.*
अतिथि सबका गुरु होता है।

सुलभापराधः परिजनो नाम। - *प्रतिमा.*
सेवक अनायास अपराध करते रहते हैं।

नारी

अनृतं साहसं माया मूर्खत्वमतिलोभता ।
अशौचं निर्दयत्वञ्च स्त्रीणां दोषाः स्वभावजाः॥ - *पञ्च./चाण.*
असत्य, साहस, माया, मूर्खता, अतिलोभ, अपवित्रता और निर्दयता - स्त्रियों के ये स्वाभाविक दोष माने गए हैं।

असती भवति सलज्जा। - *पञ्च.*
कुलटा स्त्री बनावटी लाज करती है।

असम्भोगो जरा स्त्रीणाम्। - *सु.र.भा.*
पुरुष का साथ न होना स्त्रियों के लिए बुढ़ापा है।

असारे खलु संसारे सारं सारङ्गलोचनाः। - *सु.र.भा.*
इस असार संसार में सार पदार्थ मृगनयनी स्त्री है।

एका नारी सुन्दरी वा दरी वा। - *भर्तृ.*
चाहे सुन्दरी हो या असुन्दरी—एक ही नारी (पत्नी) होनी चाहिए। अथवा एक सुन्दरी पत्नी का साथ हो या गुफा में (तपश्चरण हेतु) निवास हो।

किं न कुर्वन्ति योषितः।
स्त्रियाँ क्या नहीं कर सकतीं ?
काह न अबला कर सके।

कीर्तिः श्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा। - *गीता*
मैं (श्रीकृष्ण) स्त्रियों में कीर्ति, श्री, वाक्, स्मृति, मेधा, धृति और क्षमा हूँ।

को हि वित्तं रहस्यं वा स्त्रीषु शक्नोति गूहितुम्। - *कथा.*
कौन धन या रहस्य की कोई बात स्त्रियों में छिपाने में समर्थ है ?

घृतकुम्भसमा नारी तप्ताङ्गारसमः पुमान्।
तस्माद्घृतं च वह्निं च नैकत्र स्थापयेद् बुधः॥ - *हितो.*
स्त्री घी के घड़े के समान और पुरुष जलते हुए अंगारे के समान है। समझदार मनुष्य को चाहिए कि वह घी और आग को एक स्थान पर न रहने दे।

न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनिताननम्। - *काव्या.*
रमणी का सुन्दर मुख भी विना आभूषण के अच्छा नहीं लगता है।

न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति। - *मनु.*
स्त्री स्वतन्त्र होने के योग्य नहीं है।

निसर्गसिद्धो नारीणां सपत्नीषु हि मत्सरः। - *कथा.*
सौत के प्रति स्त्रियों में डाह होना स्वाभाविक है।

पुरन्ध्रीणां चित्तं कुसुमसुकुमारं हि भवति। - *उत्तर.*
स्त्रियों का चित्त तो पुष्प के समान कोमल होता है।

प्रत्युत्पन्नमतिस्त्रैणम्। - *अभिज्ञा.*
स्त्रियां तत्काल उपाय सोचने वाली होती हैं।

वृद्धस्य तरुणी विषम्। - *हितो.*
बूढ़े मनुष्य के लिए तरुणी स्त्री विष है।

स्त्रियाश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं देवो न जानाति कुतो मनुष्यः।
- *सु.र.भा.*

स्त्री के चरित्र और पुरुष के भाग्य को देवता भी नहीं जानते हैं, फिर मनुष्य क्या जानेगा ?
विधिहु न नारिहृदय गति जानी।

स्त्रीचित्तमहो विचित्रमिति। - *कथा.*
स्त्रियों का चित्त सचमुच बड़ा विचित्र है।

स्त्रीणां भूषणं लज्जा। - *चाण.सू.*
स्त्रियों का आभूषण लज्जा है।

स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि। - *मनु./चाण.*
दूषित कुल से भी स्त्रीरत्न लेना चाहिए।

स्त्रीषु वाक्संयमः कुतः। - *कथा.*
स्त्रियों में वाणी का संयम कहाँ ?

मित्र

अणुपूर्वं बृहत्पश्चाद् भवत्यार्येषु सङ्गतम्।
विपरीतमनार्येषु यथेच्छसि तथा कुरु॥
अच्छे लोगों की मित्रता पहले कम, फिर अधिक होती जाती है। बुरे लोगों की मित्रता इसके विपरीत होती है - अतः जैसी इच्छा हो, वैसा करो।

अतः परीक्ष्य कर्तव्यं विशेषात् सङ्गतं रहः।
अज्ञातहृदयेष्वेवं वैरीभवति सौहृदम् ॥ - *अभिज्ञा.*
इसीलिए एकान्त का सम्बन्ध विशेष रूप से परीक्षा करके करना चाहिए। अज्ञात हृदय वाले व्यक्तियों से किया गया प्रेम इसी प्रकार दुःखदायी बन जाता है।

अधनस्य कुतो मित्रम्, अमित्रस्य कुतो बलम्। - *चाण.*
निर्धन के मित्र कहाँ होते हैं और मित्रहीन के पास बल कहाँ होता है?

अनार्यसम्बन्धाद् वरमार्यशत्रुता। - *चाण.सू.*
अनार्य मित्र से आर्य शत्रु भला।

अभयं मित्रादभयममित्रात्। - *अथर्व.*
मित्र की ओर से अभय हो, शत्रु की ओर से अभय हो।

अमले मलं नियच्छति दीपज्वालेव खलमैत्री। - *सु.र.भा.*
खल की मित्रता दीपक की लौ की तरह निर्मल को भी मलिन कर देती है।

अविचार्य प्रियं कुर्यात् तन्मित्रं मित्रमुच्यते।
जो मित्र विना विचारे प्रिय करता है, उसको ही मित्र कहना चाहिए।

आपत्काले तु सम्प्राप्ते यन्मित्रं मित्रमेव तत्। - *पञ्च.*
विपत्ति के समय जो मित्र बना रहे, वही मित्र है।

आपत्सु मित्रं जानीयाद्युद्धे शूरं धने शुचिम्।
भार्यां क्षीणेषु वित्तेषु व्यसनेषु च बान्धवान्॥ - *हितो.*
विपत्ति में मित्र, युद्ध में वीर, धन होने पर मन की शुद्धता, धन नष्ट होने पर स्त्री और आपत्तियों में बान्धवों की परीक्षा करनी चाहिए।

एकं मित्रं भूपतिर्वा यतिर्वा। - *भर्तृ.*
राजा हो या सन्यासी– मित्र एक ही होना चाहिए।

एतत्तु मां दहति नष्टधनाश्रयस्य, यत्सौहृदादपि जनाः शिथिलीभवन्ति।
यह बात मुझे बहुत दुःख देती है कि धन नष्ट होने पर व्यक्ति की मित्रताएं भी शिथिल हो जाती हैं।
धनी के सब साथी।

कर्तव्यं भाषितं सुहृदाम्।
मित्र का कहना मानना चाहिए।

कुवाक्यान्तं च सौहृदम्। *- पञ्च.*
सुदृढ़ मित्रता भी कटुवचन के प्रयोग से टूट जाती है।

कृशे कस्यास्ति सौहृदम्। *- पञ्च.*
दुर्बल के साथ किसकी मित्रता हो सकती है?

तन्मित्रं यत्र विश्वासः। *- चाण.*
जिस पर विश्वास है, वही मित्र है।

दिनस्य पूर्वार्धपरार्धभिन्ना छायेव मैत्री खलसज्जनानाम्।
- भर्तृ./पञ्च.
पूर्वाह्न की छाया के समान प्रारम्भ में लंबी और बाद में घटने वाली खल की मित्रता होती है, जबकि सज्जन की मित्रता अपराह्न की छाया के समान प्रारम्भ में छोटी और बाद में बढ़ने वाली होती है।

न कश्चित्कस्यचिन्मित्रं न कश्चित्कस्यचिद्रिपुः।
व्यवहारेण मित्राणि जायन्ते रिपवस्तथा ॥ *- हितो.*
न कोई किसी का मित्र है, न कोई किसी का शत्रु। संसार में व्यवहार से ही लोग मित्र और शत्रु होते रहते हैं।

न विश्वसेदविश्वस्तं मित्रं चापि न विश्वसेत् ।
कदाचित्कुपितं मित्रं सर्वं गुह्यं प्रकाशयेत् ॥ *- चाण.*
जो विश्वासयोग्य न हो, उसका विश्वास नहीं करना चाहिए। मित्र का भी विश्वास नहीं करना चाहिए। कदाचित् ऐसा मित्र रूठकर सभी गुप्त बातों को प्रकाशित कर दे।

न स सखा यो न ददाति सख्ये। *- ऋग्वेद.*
वह मित्र नहीं है, जो मित्र की सहायता नहीं करता।

नास्ति हस्तिसमः सखा। *- सु.र.भा.*
हाथी के समान मित्र नहीं होता।
हाथी मेरा साथी।

निर्दोषो वा सदोषो वा वयस्यः परमा गतिः। *– रामा.*
निर्दोष हो या दोषयुक्त – मित्र ही मनुष्य की परम गति है।

नृपं न मित्रं जानीयात्।
राजा को अपना मित्र कभी नहीं समझना चाहिए।
राजा किसके पाहुंने जोगी किसके मीत।

परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम्।
वर्जयेत्तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम्।। *– हितो./चाण.*
जो पीठ पीछे काम बिगड़ता हो और मुंह पर मीठी-मीठी बातें करता हो, ऐसे मित्र को त्याग दें। वह तो विष से भरे उस घड़े के समान है, जिसकी ऊपरी सतह पर दूध दिखता हो।

मित्रं धर्मेण योजयेत्। *– चाण.*
मित्र को धर्म-कार्यों में लगाएं।

मित्रेण किं व्यसनकालपराङ्मुखेन।
ऐसे मित्र से क्या लाभ, जो मुसीबत में मुंह मोड़कर अलग हो जाए।

मित्रेण सह यो भुङ्क्ते ततो नास्तीह पुण्यवान्।
जो मित्र के साथ भोजन करता है, उसके समान पुण्यात्मा दूसरा नहीं है।

ययोरेव समं वित्तं ययोरेव समं कुलम्।
तयोर्मैत्री विवादश्च न तु पुष्टविपुष्टयोः।। *– पञ्च.*
जिन व्यक्तियों का कुल और धन समान हो, उन्हीं की मैत्री और शत्रुता अच्छी होती है। सबल और निर्बल के मध्य की मैत्री तथा शत्रुता अच्छी नहीं होती।

राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः। *– हितो./पञ्च.*
राजा के द्वार पर और श्मशान में जो साथ रहता है, वही सच्चा बन्धु है।
अपना वही जो आवे काम।

वरं न मित्रं न कुमित्रमित्रम्। *– चाण.*
दुष्ट मित्र से मित्र का न होना अच्छा है।

शिवा नः सख्या सन्तु। - *ऋग्वेद.*
हमारी मित्रताएं मंगलजनक हों।

स किंसखा साधु न शास्ति योऽधिपम्। - *किरात.*
वह मित्र निन्दनीय है, जो अपने स्वामी को अच्छी बातें न बताए।

स सुहृद् व्यसने यः स्यात्। - *पञ्च.*
जो विपत्ति में साथ हो, वही मित्र है।
वक्त पड़े पर जानिए, को बैरी को मीत।

गुरुजन

अश्मापि याति देवत्वं महद्भिः सुप्रतिष्ठितः। - *हितो.*
बड़े लोगों के हाथ से प्रतिष्ठित हुआ पत्थर भी देवता बन जाता है।

आचार्यदेवो भव। - *तैत्ति. उप.*
आचार्य में देवबुद्धि रखो।

आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः। - *मनु.*
आचार्य ब्रह्म की मूर्ति है।

आज्ञा गुरूणां ह्यविचारणीया। - *रघु.*
गुरुजनों की आज्ञा सोच-विचार के योग्य नहीं होती है, वह तो करने के योग्य होती है।
बड़ों की आज्ञा सर माथे।

कर्तव्यो महदाश्रयः। - *हितो./पञ्च.*
बड़ों का सहारा लेना चाहिए।
बड़ों के सहारे छोटे भी तर जाते हैं।

दोषा वाच्या गुरोरपि। - *सु.र.भा.*
गुरु के दोष भी व्यक्त करने चाहिए।

न महाजनहासः कर्तव्यः।
बड़े लोगों का परिहास नहीं करना चाहिए।

बृहत्सहायः कार्यान्तं क्षोदीयानपि गच्छति।
सपत्नीः प्रापयन्त्यब्धिं सिन्धवो नगनिम्नगाः॥ - *शिशु.*
बड़े सहायकों वाला अत्यन्त तुच्छ व्यक्ति भी कार्य को पूरा करके अन्त तक पहुंच जाता है, जैसे छोटी पहाड़ी नदियां बड़ी नदियों का साथ लेकर समुद्र से जा मिलती हैं।

महतां पदमनुविधेयम्।
बड़ों का अनुकरण करना चाहिए।

महतां हि धैर्यमविभाव्यवैभवम्। - *किरात.*
बड़े लोगों के धैर्य के वैभव का पता नहीं चलता।

महाजनस्य सम्पर्कः कस्य नोन्नतिकारकः। - *पञ्च.*
बड़े लोगों का संपर्क भला किसके लिए उन्नतिकारक नहीं होता।

महाजनो येन गतः स पन्थाः। - *पञ्च.*
बड़े लोग जिस पर चलते हैं, वही सही राह है।
बड़ों की राह भली।

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत् प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥ - *गीता*
श्रेष्ठ पुरुष जो-जो आचरण करता है, अन्य पुरुष भी उसके अनुसार चलते हैं। वह पुरुष जो कुछ प्रमाण बना देता है, दूसरे लोग उसके अनुसार ही बरतते हैं।

विद्याहीनं गुरुं त्यजेत्। - *चाण.*
विद्या से हीन गुरु को छोड़ दे।

व्यपदेशेन महतां सिद्धिः सञ्जायते परा। - *पञ्च.*
महान् व्यक्ति का मात्र नाम लेने से कभी-कभी बहुत बड़ा कार्य सिद्ध हो जाता है।

हरेः पदाहतिः श्लाघ्या न श्लाघ्यं खररोहणम्। - *सु.र.भा.*
घोड़े की लात सहना अच्छा है, किन्तु गदहे की सवारी अच्छी नहीं।
छोटों के सम्मान से बड़ों की दुत्कार भली।

परोपदेश

अन्तःसारविहीनानामुपदेशो न जायते।
मलयाचलसंसर्गान्न वेणुश्चन्दनायते ॥ - *चाण.*
शून्यहृदय वालों को उपदेश का लाभ नहीं होता है। मलयगिरि के संसर्ग से बांस चन्दन नहीं हो जाता है।

उपदेशो न दातव्यो यादृशे तादृशे जने। - *पञ्च.*
जैसे-तैसे व्यक्ति को उपदेश नहीं देना चाहिए।

उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये। - *पञ्च./हितो.*
मूर्खों को उपदेश देना उनके क्रोध को बढ़ाने के लिए होता है, शान्ति के लिए नहीं।

परोपदेशकुशला दृश्यन्ते बहवो जनाः। - *सु.र.भा.*
दूसरों को उपदेश देने में बहुत लोग चतुर दिखाई देते हैं।
पर उपदेश कुशल बहुतेरे।

परोपदेशवेलायां शिष्टाः सर्वे भवन्ति वै। - *सु.र.भा.*
दूसरों को उपदेश देते समय सभी लोग शिष्ट बन जाते हैं।

परोपदेशे पाण्डित्यं सर्वेषां सुकरं नृणाम्। - *हितो.*
परोपदेश में पण्डिताई सभी मनुष्यों के लिए सरल है।

परोपदेशे पाण्डित्यं स्वेषु कार्येष्वनुद्यमः।
दूसरों को उपदेश देने में चतुराई और अपने कार्य में आलस्य - साधारण तौर पर यही दिखाई देता है।

सुखमुपदिश्यते परस्य। - *काद.*
दूसरे को उपदेश देना सरल है।

संगति

कस्य सत्सङ्गो न भवेच्छुभः। - *कथा.*
सत्संग किसके लिए शुभ नहीं होता है ?

काचः काञ्चनसंसर्गाद् धत्ते मारकतीं द्युतिम्। - *हितो.*
काँच सोने के संसर्ग से मरकतमणि की आभा को धारण करता है।

चन्द्रचन्दनयोर्मध्ये शीतला साधुसङ्गतिः। - *सु.र.भा.*
चन्द्रमा और चन्दन से भी अधिक ठण्डक देने वाली सज्जनों की संगति होती है।

ध्रुवं फलाय महते महद्भिः सह सङ्गमः। - *कथा.*
महापुरुषों की संगति निश्चय ही महान् फल प्रदान करती है।

न कस्य वीर्याय वरस्य सङ्गतिः। - *कुमार.*
श्रेष्ठ व्यक्ति की संगति किसकी शक्ति नहीं बढ़ाती ?

पयोऽपि शौण्डिकीहस्ते वारुणीत्यभिधीयते। - *हितो.*
कलवारिन के हाथों में दूध भी मदिरा समझा जाता है।
को न कुसंगत पाहि नसाई।

मन्दोऽप्यमन्दतामेति संसर्गेण विपश्चितः। - *मालवि.*
विद्वान् के संसर्ग में रहने से मन्द बुद्धि वाला मनुष्य भी तीक्ष्ण बुद्धि वाला हो जाता है।

संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति। - *सु.र.भा.*
संसर्ग से दोष और गुण उत्पन्न होते हैं।
जैसी संगत वैसी रंगत।

संसारकटुवृक्षस्य द्वे फले ह्यमृतोपमे ।
सुभाषितञ्च सुस्वादु सङ्गतिः सुजनैः सह ॥ - *चाण.*
संसाररूपी कडुवे वृक्ष के अमृत के समान सुन्दर स्वाद वाले दो फल

हैं—पहला सुभाषित और दूसरा सज्जनों की संगति।

सङ्गः सतां किमु न मङ्गलमातनोति। - *रसगङ्गाधरः*
सज्जनों का साथ मनुष्य का क्या-क्या कल्याण नहीं करता ?

सतां सङ्गो हि भेषजम्। - *हितो.*
सत्संग एक उत्तम ओषधि है।

सत्सङ्गजानि निधनान्यपि तारयन्ति। - *उत्तर.*
सज्जनों की संगति से उत्पन्न हुई मृत्यु भी उद्धार करती है।

सत्सङ्गतिः कथय किं न करोति पुंसाम्। - *भर्तृ.*
कहो तो, सत्संगति मनुष्य का क्या भला नहीं कर सकती ?



वस्तुपरक

धन

अफलं वित्तमदत्तमभुक्तम्।
दान और भोग न किया गया धन व्यर्थ है।

अभोगस्य हतं धनम्। - *पञ्च.*
जो व्यक्ति धन का उपभोग नहीं करता, उसका धन व्यर्थ है।

अभ्यागतो यत्र न तत्र लक्ष्मीः। - *सु.र.भा.*
जहाँ अभ्यागत का सत्कार नहीं होता, वहाँ लक्ष्मी नहीं आती।

अमृतत्वस्य तु नाशाऽस्ति वित्तेन। - *बृह.उप.*
धन से अमरता की प्राप्ति की कोई संभावना नहीं है।

अर्थः सर्वजगन्मूलम्।
धन समस्त जगत् का मूल है।
टके का सब खेल है।

अर्थमनर्थं भावय नित्यं नास्ति ततः सुखलेशः सत्यम्। - चौर.
धन को सदैव अनर्थ समझो, उसमें सुख का लेशमात्र भी नहीं है।
दौलत का नशा बुरा है।

अर्थमूलौ धर्मकामौ। - *चाण.सू.*
धर्म और काम का मूल अर्थ है।

अर्थस्य पुरुषो दासः दासो ह्यर्थो न कस्यचित्। - *किरात.*
मनुष्य धन का दास है, किन्तु निश्चय ही धन किसी का दास नहीं है।

अर्थाः सर्वत्र पूज्यन्ते न शरीराणि देहिनः। - *हेमचन्द्रः*
धन का सर्वत्र आदर होता है, न कि मानव के शरीरों का।

अर्थातुराणां न गुरुर्न बन्धुः। - *सु.र.भा.*
धन पाने के लिए लालायित लोगों के लिए न कोई गुरु है और न कोई बन्धु।

अर्थाद् धर्मश्च कामश्च स्वर्गश्चैव नराधिप। - *किरात.*
हे राजन् ! धन से धर्म, काम और स्वर्ग सिद्ध होते हैं।

अर्थानामर्जने क्लेशः अर्जितानां च रक्षणे। - *पञ्च.*
धन का अर्जन और उसका रक्षण दोनों ही कष्ट देने वाले हैं।

अर्थानुरागिणां न गुरुर्न बन्धुः।
धन में आसक्त लोगों के लिए न कोई गुरु है और न कोई बन्धु।

अर्थिनि जने त्यागं विना लक्ष्मीश्च का। - *सु.र.भा.*
अर्थी (मांगने वाले या जरूरतमंद) व्यक्ति को देने के अतिरिक्त धन से लाभ ही क्या है ?

अर्थेनोपार्ज्यते धर्मो धर्मेणार्थ उपार्ज्यते।
धन से धर्म प्राप्त होता है और धर्म से धन प्राप्त होता है।

अर्थो रक्षति रक्षितः।
रक्षित धन मनुष्य की रक्षा करता है।

अर्थो हि लोके पुरुषस्य बन्धुः। - *चाण.*
संसार में धन ही मनुष्य का सच्चा मित्र है।

अल्प आयो व्ययो महान्।
आमदनी थोड़ी व्यय अधिक।
अस्सी की आमद चौरासी का खर्च।

असन्तोषः श्रियो मूलम्। - *महा.*
असन्तोष ही लक्ष्मी की प्राप्ति का मूल है।

उत्पद्यन्ते विलीयन्ते दरिद्राणां मनोरथाः।
दरिद्र व्यक्तियों के मनोरथ उनके मन में उठते और विलीन हो जाते हैं।

कष्टं निर्धनजीवनम्।
निर्धन व्यक्ति का जीवन कष्टकारक होता है।

कष्टं निर्धनिकस्य जीवितमहो दारैरपि त्यज्यते। - *सु.र.भा.*
निर्धन का जीवन एक अभिशाप है, हाय ! पत्नी भी साथ छोड़ देती है।
गरीबी में अपने भी साथ छोड़ जाते हैं।

किञ्चित्कालोपभोग्यानि यौवनानि धनानि च। - *पञ्च.*
यौवन और धन का भोग थोड़े समय तक ही किया जा सकता है।

कोऽर्थान्प्राप्य न गर्वितः। - *पञ्च.*
धन पाकर किसे घमण्ड नहीं हुआ है।

चाण्डालोऽपि नरः पूज्यो यस्यास्ति विपुलं धनम्। - *सु.र.भा.*
विपुल धन से सम्पन्न नीच व्यक्ति भी पूजनीय हो जाता है।

दत्तभुक्तफलं धनम्। - *पञ्च.*
दान करने और भोगने के लिए धन होता है।
रुपया हाथ का मैल है।

दरिद्रस्य विषं गोष्ठी। - *चाण.*
दरिद्र के लिए बड़ा परिवार विष है।

दारिद्र्यं मरणं लोके धनमायुः शरीरिणाम्। - *बृहत्.*
संसार में शरीरधारियों के लिए दरिद्रता मरण है, तो धन जीवन।

दारिद्र्यदोषो गुणराशिनाशी। - *घटकर्परकाव्यम्*
दरिद्रता-दोष मनुष्य के सैकड़ों गुणों को धूल में मिला देता है।

धनक्षये दीप्यति जाठराग्निः। - *पञ्च.*
धन नष्ट होने पर पेट की अग्नि प्रदीप्त हो जाती है—भूख बढ़ जाती है।

धनाद् धर्मः ततः सुखम्। - *हितो.*
धन से धर्म होता है और धर्म से सुख।

धनेन किं यो न ददाति नाश्नुते।
उसको धन से क्या लाभ, जो न उपभोग करता है और न देता है।

धिग्दारिद्र्यं खलु देहिनाम्। - *पञ्च.*
मनुष्य की दरिद्रता को धिक्कार है।
नहि दरिद्र सम दुख जग मांहि।

न धैर्येण विना लक्ष्मीः।
विना धैर्य के लक्ष्मी नहीं मिलती।

न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः। - *कठो.*
मनुष्य धन से कभी तृप्त नहीं होता।

नहि केष्वपि कार्येषु सीदति द्रव्यवान्नरः।
पैसे वाला व्यक्ति किसी भी काम के लिए नहीं अटकता है।

निर्द्रव्यं पुरुषं त्यजन्ति गणिका भ्रष्टश्रियं मन्त्रिणः।
धनहीन पुरुष को वेश्याएँ त्याग देती हैं और राज्यलक्ष्मी से भ्रष्ट राजा को मन्त्री त्याग देते हैं।

निर्धनता सर्वापदामास्पदम्। - *मृच्छ.*
निर्धनता सब विपत्तियों का घर है।

परहस्ते गतं धनम्। - *चाण.*
पराये हाथ में गया धन आवश्यकता पड़ने पर काम नहीं आता।

भवन्त्यपि निष्फलैव धनऋद्धिर्भवति कृपणपुरुषस्य।
ग्रीष्मातपसन्तप्तस्य निजच्छायेव पथिकस्य ॥ - *गाथा.*
कंजूस व्यक्ति के लिए धनसम्पदा होते हुए भी निष्फल ही है, जैसे ग्रीष्म की गर्मी से पीड़ित यात्री को उसकी अपनी छाया का कोई लाभ नहीं है।

भोगो भूषयते धनम्। - *चाण.*
भोग से ही धन सजता-संवरता है।

मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान् को दरिद्रः। - *भर्तृ.*
मन सन्तुष्ट हो, तो कौन धनी और कौन दरिद्र ?
जब आवे सन्तोष धन, सब धन धूरि समान।

मा गृधः कस्यस्विद् धनम्। - *ईशा.*
आसक्त मत हो, धन किसका है ? या दूसरे के धन में आसक्त मत हो।

मोहान्धमविवेकं हि श्रीश्चिराय न सेवते। - *कथा.*
मोह में अन्धे और अविवेकी की सेवा लक्ष्मी देर तक नहीं करती।

यस्यार्थः स च जीवति। - *चाण.*
जिसके पास धन है, वही जीवित है।

यस्यार्थास्तस्य मित्राणि, यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः। - *पञ्च./चाण.*
जिसके पास धन है, उसी के मित्र हैं। जिसके पास धन है, उसी के सम्बन्धी हैं।

येनाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्याम्। - *बृह.उप.*
मैं (मैत्रेयी) उस सम्पत्ति को लेकर क्या करूँगी, जिससे मैं अमर नहीं हो सकती हूँ।

लक्ष्यते न गतिः सम्यग्घनस्य च धनस्य च।
मेघ और धन की गति पूर्णरूपेण नहीं जानी जा सकती है।

लब्धापि खलु दुःखेन परिपाल्यते। - *काद.*
लक्ष्मी यदि मिल भी जाए, तो बड़े कष्ट से सुरक्षित रहती है।

वृणुते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः।
विचारपूर्वक काम करने वाले व्यक्ति के पास गुणों की लोभी सम्पत्तियाँ स्वयं ही आती हैं।

शनैः शनैश्च भोक्तव्यं स्वयं वित्तमुपार्जितम्। - *पञ्च.*
मनुष्य को स्वयं कमाए हुए धन का उपभोग धीरे-धीरे करना चाहिए।

सन्तुष्टस्य धनेन किम्। - *बृहत्.*
जिसके पास सन्तोष है, उसे धन से क्या ?

सर्वशून्या दरिद्रता। - *चाण.*
दरिद्रता में सब कुछ शून्य है।
गरीब को संसार सूना।

सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति। - *भर्तृ.*
सभी गुण धन के आश्रय में होते हैं।

सर्वे जनाः काञ्चनमाश्रयन्ति।
सभी लोग धन के आश्रय में रहते हैं।

भोजन

अजीर्णे पथ्यमप्यन्नं व्याधये मरणाय वा।
अजीर्ण में पथ्य अन्न भी रोग उत्पन्न करता है या मृत्यु का कारण बनता है।

अजीर्णे भेषजं वारि जीर्णे तद् बलप्रदम्। - *चाण.*
अपच में जल पीना ओषधि है और भोजन पचने पर जल पीना बल प्रदान करने वाला है।

अजीर्णे भोजनं विषम्। - *हितो./चाण.*
अजीर्ण में भोजन विष के समान है।

अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यं चातिभोजनम्। - *मनु.*
अतिभोजन आरोग्य, आयु और स्वर्ग-प्राप्ति का विरोधी है।

अन्नस्य क्षुधितं पात्रम्।
भूखा व्यक्ति अन्न-दान का पात्र है।

आतुरः सर्वभक्षी च नरः शीघ्रं विनश्यति।
रोगी और खाद्य-अखाद्य सब कुछ खाने वाला व्यक्ति शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

आहारे व्यवहारे च त्यक्तलज्जः सुखी भवेत्। - *चाण.*
भोजन और आपसी व्यवहार में संकोच न करने वाला ही सुखी रहता है।

आहारो हि मनुष्याणां जन्मना सह जायते। - *चाण.*
मनुष्यों का भोजन उनके जन्म के साथ ही पैदा किया गया है।
दाने दाने पर लिखा है, खाने वाले का नाम।

कष्टात्कष्टतरं क्षुधा।
भूख सब दुःखों में बड़ा दुःख है।

कुभोज्येन दिनं नष्टम्। - *सु.र.भा.*
बुरा भोजन करने से दिन नष्ट हो जाता है।

केवलाघो भवति केवलादी। - *ऋग्वेद.*
अकेला भोजन करने वाला केवल पाप को खाता है।

को न याति वशं लोके मुखे पिण्डेन पूरिते।
भोजन देने से कौन अपने वश में नहीं हो जाता है ?
लेने-देने से सब अपने हो जाते हैं।

क्षुधातुराणां न बलं न तेजः।
भूख से व्याकुल व्यक्ति के पास न बल रहता है और न तेज ही रहता है।

क्षुधातुराणां न रुचिर्न पक्वम् / वेला।
भूख से व्याकुल व्यक्ति न रुचि देखता है और न स्वाद या समय।
भूख में सब कुछ अच्छा लगता है।

जीवो जीवस्य जीवनम्। - *सु.र.भा.*
एक जीव दूसरे जीव के लिए आहार रूप में जीवन है।
१. बड़ी मछली छोटी मछली को निगल जाती है।
२. जी का बैरी जी।

नास्ति क्षुधासमं दुःखं नास्ति रोगः क्षुधासमः।
नास्त्याहारसमं सौख्यम्.......॥ - *सु.र.भा.*
भूख के बराबर कोई दुःख नहीं है। भूख के बराबर कोई रोग नहीं है। भोजन के बराबर कोई सुख नहीं है।

नास्ति चान्नसमं प्रियम्। - *चाण.*
अन्न के समान कोई प्रिय पदार्थ नहीं है।

निद्राहारौ नियमात्सुखदौ।
निद्रा और आहार नियम के साथ सुख देने वाले होते हैं।

परान्नं दुर्लभं लोके।
संसार में पराया अन्न बड़ी मुश्किल से खाने को मिलता है। (उपहास में कहा गया है।)

परान्नं प्राणसङ्कटम्।
परिश्रम किए बिना पराया अन्न खाना प्राणों का संकट है।

पिपासुता शान्तिमुपैति वारिणा न जातु दुग्धान्
मधुनोऽधिकादपि। - *नैषध.*
प्यासे व्यक्ति की प्यास केवल जल से ही शान्त होती है, न कि दूध या शहद से।

प्रायेण श्रीमतां लोके भोक्तुं शक्तिर्न विद्यते।
काष्ठान्यपि हि जीर्यन्ते दरिद्राणां च सर्वशः॥ - *महा.*
धनवानों में सुस्वादु अन्न को सेवन करने की शक्ति प्रायः नहीं रह जाती है, परन्तु गरीब लोग काठ को भी पूरी तरह से पचा जाते हैं।

बुभुक्षितं न प्रतिभाति किञ्चित्। - *सु.र.भा.*
भूखे व्यक्ति को कुछ भी अच्छा नहीं लगता है।
भूखे भजन न होए गोपाला।

बुभुक्षितः किन्न करोति पापम्। – *हितो./पञ्च.*
भूख से मरता व्यक्ति क्या पाप नहीं कर डालता है ?
मरता क्या न करता।

बुभुक्षितैर्व्याकरणं न भुज्यते, पिपासितैः काव्यरसो न पीयते।
– *सु.र.भा.*
भूखे लोग व्याकरण नहीं खाते और प्यासे लोग काव्यरस नहीं पीते।

भुक्त्वा शतपदं व्रजेत्।
भोजन के अनन्तर सौ कदम चलें।

मधुरेण समापयेत्।
मीठे से भोजन को समाप्त करना चाहिए।

मानेन तृप्तिर्न तु भोजनेन। – *चाण.*
मनुष्य की तृप्ति सम्मान से होती है, भोजन से नहीं।

मितभोजनं स्वास्थ्यम्।
कम भोजन ही स्वास्थ्य है।

यदन्नं भक्ष्यते नित्यं जायते तादृशी प्रजाः।
मनुष्य जैसा अन्न नित्य खाता है, उसके वैसी सन्तान पैदा होती है।

लङ्घनं परमौषधम्।
रोग होने पर उपवास करना सर्वोत्तम ओषधि है।

वस्त्रपूतं जलं पिबेत्। – *मनु./चाण.*
पानी छान कर पीना चाहिए।

रत्न

केन रत्नमिदं सृष्टं मित्रमित्यक्षरद्वयम्। – *पञ्च./भोज.*
ये दो अक्षरों वाला रत्नस्वरूप 'मित्र' शब्द किसने बनाया है ?

न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत्। - *कुमार.*
रत्न किसी को ढूंढ़ने नहीं जाता है, वरन् सब रत्न को ही ढूंढ़ते हैं।

न रत्नमाप्नोति हि निर्मलत्वं शाणोपलारोपणमन्तरेण।
सान पर खरादे विना रत्न में उज्ज्वलता नहीं आती है।

न स्त्रीरत्नसमं रत्नम्।
स्त्री-रत्न के समान अन्य रत्न नहीं है।

नानारत्ना वसुन्धरा। - *समयो.*
पृथिवी में बहुत रत्न हैं।

निशारत्नं चन्द्रः।
चन्द्रमा रात्रि को सुशोभित करने वाला रत्न है।

पत्तने सति ग्रामे रत्नपरीक्षा। - *मालवि.*
नगर के होते हुए ग्राम में रत्नपरीक्षा क्यों ?
योग्य व्यक्ति के होते हुए अयोग्य से राय लेना व्यर्थ है।

परीक्षका यत्र न सन्ति देशे नार्घन्ति रत्नानि समुद्रजानि। - *पञ्च.*
जिस स्थान में परीक्षा करने वाले पारखी लोग नहीं हैं, वहाँ समुद्र से निकाले गए श्रेष्ठ रत्नों का भी कोई मूल्य नहीं होता है।

पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि जलमन्नं सुभाषितम्।
मूढैः पाषाणखण्डेषु रत्नसंज्ञा विधीयते ॥ - *चाण.*
पृथिवी पर तीन रत्न हैं—जल, अन्न और सुभाषित वचन। मूर्ख लोग पत्थर के टुकड़ों जैसे हीरा, पन्ना आदि को रत्नों का नाम देते हैं।

बहुरत्ना वसुन्धरा। - *चाण.*
पृथिवी बहुत से रत्नों से भरी है।

यत्नं विना रत्नं न हि लभ्यते।
विना प्रयत्न के रत्न नहीं मिलता है।
सेवा बिन मेवा नहीं।

रत्नं खनिः प्रसूते रचयति शिल्पी तु तत् शोभाम्।
खान रत्न को पैदा करती है, किन्तु शिल्पी उसमें शोभा लाता है।

रत्नं समायुञ्जतु काञ्चनेन। - *सु.र.भा.*
रत्न सुवर्ण के साथ शोभा पाता है।

रत्नाकरे युज्यत एव रत्नम्। - *कुमार.*
रत्नाकर समुद्र में रत्न का होना उचित ही है।

विष

कार्यस्यापेक्षया भुक्तं विषमप्यमृतायते। - *पञ्च.*
किसी कार्य की इच्छा से खाया गया विष भी अमृत के समान काम करता है।

तक्षकस्य विषं दन्ते मक्षिकायाः शिरो विषम्।
वृश्चिकस्य विषं पुच्छे सर्वाङ्गे दुर्जने विषम्॥ - *चाण.*
साँप के दांत में, मक्खी के शिर में, बिच्छू की पूंछ में और दुर्जन के सारे अंगों में विष होता है।

दुरधीता विषं विद्या। - *हितो.*
अच्छी तरह न पढ़ी गई विद्या विष है।

विषकुम्भं पयोमुखम्।
ऊपर दूध और अन्दर विष भरा घड़ा।
विषरस भरा कनक घट जैसा।

विषमप्यमृतं क्वचिद् भवेदमृतं वा विषमीश्वरेच्छया। - *रघु.*
ईश्वर की इच्छा से विष कहीं अमृत हो जाता है और अमृत कहीं विष हो जाता है।

विषं विषमेव सर्वकालम्। - *चाण.सू.*
विष सभी कालों में विष ही रहता है।

विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य स्वयं छेत्तुमसाम्प्रतम्। - *कुमार.*
अपने हाथ से सींचे गए विषवृक्ष को भी अपने ही हाथ से काटना ठीक नहीं।

विषस्य विषमौषधम्।
ज़हर ज़हर से जाता है।

विषस्य विषयाणां हि दृश्यते महदन्तरम्।
उपभुक्तं विषं हन्ति विषयाः स्मरणादपि॥ - *सु.र.भा.*
विष और विषयों में महान् अन्तर देखा जाता है। विष खाने पर मारता है, जबकि विषय स्मरण से ही मार डालते हैं।

विषादप्यमृतं ग्राह्यम्। - *चाण.सू.*
विष से भी अमृत का ग्रहण किया जाना चाहिए।



धर्म-विषयक

धर्म

अधर्मत्वमपोहति गुरुताम्।
अधर्म गौरव को नष्ट करता है।

अधर्मविषवृक्षस्य पच्यते स्वादु किं फलम्। – *कथा.*
अधर्म के विषवृक्ष में कभी भी स्वादिष्ठ फल नहीं लगता।

आनृशंस्यं परो धर्मः त्रयीधर्मः सदाफलः। – *महा.*
करुणा श्रेष्ठ धर्म है और वेदोक्त धर्म सदा फल देने वाला होता है।

आर्जवं धर्ममित्याहुरधर्मो जिह्म उच्यते। – *महा.*
सरलता को 'धर्म' कहते हैं और कुटिलता को 'अधर्म' कहते हैं।

इष्टं धर्मेण योजयेत्। – *पञ्च.*
प्रियजन को धर्म में लगाएं।

एकस्य बान्धवो धर्मो न जहाति पदात्पदम्। – *कथा.*
धर्म ही एकमात्र ऐसा बन्धु है, जो कभी साथ नहीं छोड़ता है।

को धर्मो दयया विना।
दया के विना कैसा धर्म ?

गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत्। – *हितो.*
मृत्यु ने बाल पकड़ लिए हैं, ऐसा मानकर धर्म का आचरण करें।

चलाचले हि संसारे धर्म एको हि निश्चलः। – *चाण.*
इस अस्थिर संसार में एकमात्र धर्म ही स्थिर है।

तद् विज्ञानं यत्र धर्मः। – *गाथा.*
जहाँ धर्म है, वह विज्ञान है।

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ।
तस्माद् धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत् ॥ - *मनु.*
पालन न किया गया धर्म ही मनुष्य का नाश करता है और रक्षा किया गया धर्म उसकी रक्षा करता है। अतः धर्म को नष्ट नहीं करना चाहिए, जिससे नष्ट हुआ धर्म हमें नष्ट न कर डाले।

धर्ममूलाः पुनः प्रजाः। - *महा.*
धर्म प्रजा का मूल है।

धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायाम्। - *महा.*
धर्म का तत्त्व रहस्य में छिपा हुआ है।

धर्मस्य त्वरिता गतिः। - *पञ्च.*
धर्म का फल शीघ्रता से मिलता है।

धर्मसंरक्षणायैव प्रवृत्तिर्भुवि शार्ङ्गिणः। - *रघु.*
पृथिवी पर भगवान् का अवतार धर्म की रक्षा के लिए होता है।

धर्माचारविहीनानां द्रविणं मलसञ्चयः। - *बृहत्.*
धर्माचरण से हीन मनुष्यों के लिए धन मलसंचय के समान है।

धर्मादर्थः प्रभवति धर्मात्प्रभवते सुखम्।
धर्मेण लभते सर्वं धर्मसारमिदं जगत्॥ - *रामा.*
धर्म से धन होता है। धर्म से सुख होता है। मनुष्य धर्म से सब कुछ प्राप्त करता है। धर्म ही जगत् का सार है।

धर्मान्न प्रमदितव्यम्। - *तैत्ति.उप.*
धर्म से प्रमाद नहीं करना चाहिए।

धर्मेण हन्यते शत्रुः धर्मेण हन्यते ग्रहः।
धर्मेण हन्यते व्याधिः यतो धर्मस्ततो जयः॥ - *महा.*
धर्म से शत्रु का नाश होता है। धर्म से ग्रह का निवारण होता है। धर्म से व्याधि का नाश होता है। जिस पक्ष में धर्म है, उसी पक्ष की जय होती है।

धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः। – *हितो.*
धर्म से रहित मनुष्य पशुओं के समान हैं।

धर्मो मित्रं मृतस्य च। – *चाण.*
मरे हुए मनुष्य का मित्र धर्म ही है।

धारणाद् धर्ममित्याहुर्धर्मेण विधृताः प्रजाः। – *रामा.*
धारण करने के कारण इसे 'धर्म' कहते हैं। धर्म सभी प्रजाओं को धारण किए हुए है।

धारणाद् धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः। – *महा.*
धारण करने के कारण इसे 'धर्म' कहते हैं। धर्म सभी प्रजाओं को धारण किए हुए है।

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥ – *मनु.*
धैर्य, क्षमा, दम, चोरी न करना, शुचिता, इन्द्रिय-संयम, बुद्धि, विद्या, सत्य और अक्रोध—ये दस धर्म के लक्षण हैं।

नहि धर्माभिरक्तानां लोके किञ्चन दुर्लभम्। – *रामा.*
धर्म में निष्ठा रखने वालों के लिए जगत् में कुछ भी दुर्लभ नहीं है।

नासौ धर्मो यत्र न सत्यमस्ति। – *महा./किरात.*
वह धर्म नहीं, जिसमें सत्य न हो।

नास्तिको धर्मनिन्दकः।
धर्म की निन्दा करने वाला नास्तिक है।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥ – *गीता*
साधु पुरुषों के उद्धार के लिए और दूषित कर्म करने वालों का नाश करने के लिए तथा धर्म की स्थापना करने के लिए मैं (श्रीकृष्ण) युग-युग में प्रकट होता हूँ।

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्। - *ऋग्वेद.*
देवों ने यज्ञ के द्वारा यज्ञस्वरूप का यजन किया, उस सृष्टि-यज्ञ में अपनाए गए धर्म ही मुख्य थे।

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः। - *वैशेषिकसूत्रम्*
जिससे अभ्युदय (लौकिक उत्थान) और निःश्रेयस (परम कल्याण) की सिद्धि होती है, वही धर्म है।

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्। - *गीता*
अच्छी तरह से आचरण किए गए दूसरे के धर्म से अपने धर्म का कुछ त्रुटि के साथ पालन करना कहीं अधिक अच्छा है।

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। - *गीता*
सब धर्मों को त्याग कर केवल एक मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेव की अनन्यशरण को प्राप्त हो।

सर्वेषामपि धर्माणां सदाचारः प्रशस्यते।
सब धर्मों में सदाचार प्रशंसनीय धर्म है।

सुखस्य मूलं धर्मः धर्मस्य मूलमर्थः। - *चाण.*
सुख का मूल धर्म है और धर्म का मूल धन।

स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः। - *गीता*
अपने कर्तव्यकर्म पर मर मिटना श्रेयस्कर है। दूसरे के कर्तव्यकर्म को अपनाना हानिकारक है।

सत्य

अश्वमेधसहस्राद् हि सत्यमेव विशिष्यते। - *महा./हितो.*
सत्य बोलना सहस्र अश्वमेध यज्ञ से भी श्रेष्ठ है।

असतो मा सद् गमय।
तमसो मा ज्योतिर्गमय।

मृत्योर्मामृतं गमय। - *बृह. उप.*
मुझे असत्य से सत्य की ओर, अन्धकार से प्रकाश की ओर और मृत्यु से अमृत की ओर ले चल।

असत्यं जनरञ्जनम्।
झूठी बातों से लोग अत्यन्त प्रसन्न होते हैं।

नास्ति सत्यात् परं दानं नास्ति सत्यात्परं तपः। - *महा.*
सत्य से बढ़कर न दान है और न ही तप।
साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।

नास्ति सत्यात् परो धर्मो नानृतात् पातकं परम्। - *मनु./महा.*
सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं है और झूठ से बड़ा कोई पाप नहीं है।
धरम न दूसर सत्य समाना।

सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते। - *अथर्व.*
सत्यभाषण में और असत्यभाषण में स्पर्धा बनी रहती है।

सत्यं कण्ठस्य भूषणम्। - *सु.र.भा.*
सच बोलना मनुष्य के कण्ठ का आभूषण है।

सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः॥ - *मनु.*
मनुष्य को चाहिए कि वह सत्य बोले, प्रिय बोले, अप्रिय सत्य न बोले और प्रिय असत्य भी न बोले - यही सनातन धर्म है।

सत्यं वै चक्षुः। सत्यं हि प्रजापतिः। - *शत.ब्रा.*
सत्य ही चक्षु है और सत्य ही प्रजापति है।

सत्यमेव जयते नानृतं, सत्येन पन्था विततो देवयानः। - *मु.उप.*
सत्य की ही जय होती है, असत्य की नहीं। सत्य से स्वर्ग के लिए देवयान नामक मार्ग प्रशस्त होता है।

सत्यं स्वर्गस्य सोपानम्। - *महा.*
सत्य स्वर्ग की सीढ़ी है।

सत्यस्य नावः सुकृतमपीपरन्। - *ऋग्वेद.*
सत्य की नौकाएं सत्कर्म करने वाले को पार उतार देती हैं।

सत्यान्न प्रमदितव्यम्। - *तैत्ति.उप.*
सत्य से प्रमाद नहीं करना चाहिए।

सत्येन धार्यते पृथ्वी सत्येन तपते रविः। - *मनु./चाण.*
सत्य से पृथिवी टिकी है। सत्य से सूर्य तपता है।

सत्येनोत्तभिता भूमिः। - *ऋग्वेद./अथर्व.*
सत्य ने भूमि को उठाया हुआ है। पृथिवी सत्य के आधार पर स्थित है।

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्। - *ईशा.*
स्वर्णिम पात्र से सत्य का मुख छिपा हुआ रहता है।

दया

आत्मौपम्येन भूतेषु दयां कुर्वन्ति साधवः। - *हितो.*
सज्जन अपनी तरह सभी को समझकर प्राणियों पर दया करते हैं।

को धर्मः कृपया विना। - *सु.र.भा.*
दया विना धर्म कैसा ?
दया धर्म का मूल।

दया मांसाशिनः कुतः। - *सु.र.भा.*
मांसाहारी को दया कहाँ ?

दयार्द्राः सर्वसत्त्वेषु भवन्ति विमलाशयाः। - *बृहत्.*
जिनका मन कपटरहित है, वे ही प्राणिमात्र पर दया करते हैं।

न च धर्मो दयापरः। - *समयो.*
दया से बढ़कर कोई धर्म नहीं है।

सर्वेषु भूतेषु दया हि धर्मः। - *बुद्ध.*
सब प्राणियों पर दया करना ही धर्म है।

क्षमा

अलङ्कारो हि नारीणां क्षमा तु पुरुषस्य वा। - *रामा.*
क्षमा स्त्रियों का और पुरुषों का भी अलंकार है।

क्षमयेदं धृतं जगत्। - *महा.*
क्षमा से ही यह जगत् धारण किया हुआ है।

क्षमा गुणो ह्यशक्तानां शक्तानां भूषणं क्षमा। - *महा.*
क्षमा शक्तिहीन का गुण है और शक्तिशाली का आभूषण है।

क्षमातुल्यं तपो नास्ति।
क्षमा के बराबर तप नहीं है।

क्षमा रूपं तपस्विनाम्। - *चाण.*
तपस्वियों का रूप क्षमा है।

क्षमा वशीकृतिर्लोके क्षमया किन्न साध्यते। - *महा.*
क्षमा एक वशीकरण मन्त्र है, उससे क्या सिद्ध नहीं होता ?

क्षमा हि परमा शक्तिः क्षमा हि परमं तपः। - *बुद्ध.*
क्षमा ही परम शक्ति और परम तप है।

क्षमां रक्षन्ति ये यत्नात् क्षमां रक्षन्ति ते चिरम्।
जो यत्न से क्षमा को धारण करते हैं, वे चिरकाल तक पृथिवी का पालन करते हैं।

क्षमिणा पुरुषेण भवितव्यम्।
पुरुष को क्षमाशील होना चाहिए।

ज्ञानस्याभरणं क्षमा। - *चाण.*
ज्ञान की शोभा क्षमा है।

दान

किं दातुरखिलैर्दोषैः किं लुब्धस्याखिलैर्गुणैः।
न लोभादधिको दोषो न दानादधिको गुणः॥
दाता को अखिल दोषों से क्या, क्योंकि उदारता गुण सब दोषों को छिपा देता है। लोभी को अखिल गुणों से क्या, क्योंकि लोभ सब गुणों को नष्ट कर देता है। लोभ से बड़ा दोष नहीं है और उदारता से बड़ा गुण नहीं है।

त्याग एको गुणः श्लाघ्यः किमन्यैर्गुणराशिभिः। - *सु.र.भा.*
त्याग ही एकमात्र प्रशंसायोग्य गुण है। अन्य गुणों के समुदाय से क्या प्रयोजन ?

दातुं शक्नोति यो वित्तं स शूरः स च पण्डितः।
जो धन देने में समर्थ है, वह शूर है और वही पण्डित है।

दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य।
यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति॥ - *भर्तृ./पञ्च.*
दान, भोग और नाश - धन की तीन अवस्थाएं होती हैं। जो न देता है और न भोग करता है - उसके धन की तीसरी अवस्था 'नाश' होती है।

दानं हि सर्वव्यसनानि हन्ति।
दान देने से सभी विपत्तियां नष्ट हो जाती हैं।

दानेन तुल्यो निधिरस्ति नान्यः। - *पञ्च.*
संसार में दान के समान दूसरा कोई खज़ाना नहीं है।

दानेन पाणिर्न तु कङ्कणेन। - *चाण.*
दान देने से हाथ की शोभा है, न कि कंगन से।

देशे काले च पात्रे च तद् दानं सात्विकं विदुः। - *गीता*
जो दान सुपात्र को उचित स्थान और उचित समय पर दिया जाता है, वह 'सात्विक दान' कहलाता है।

न दत्त्वा परिकीर्त्तयेत्। - *मनु.*
देकर कहें नहीं।

न दानमर्थोपचितेषु युज्यते। - *रामा.*
धनसम्पन्न व्यक्तियों को दान देना उचित नहीं है।

न दानेन विना यशः।
विना दान के यश नहीं मिलता है।

सर्वेषु दानेष्वभयप्रदानम्। - *हितो.*
सभी दानों में अभयदान श्रेष्ठ है।

सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः। - *रघु.*
सूर्य जगत् को हज़ारगुना देने के लिए ही रस का ग्रहण करता है।

हस्तस्य भूषणं दानम्। - *सु.र.भा.*
हाथ की शोभा दान से है।

उपकार

अनपेक्षितगुणदोषः परोपकारः सतां व्यसनम्। - *महा.*
गुण-दोष का ध्यान न करके परोपकार करना अच्छे लोगों का व्यसन है।

अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः स्वभाव एवैष परोपकारिणाम्।
- *अभिज्ञा./भर्तृ.*
अच्छे लोग समृद्धि पाकर उद्धत नहीं होते, क्योंकि यह परोपकारियों का स्वभाव ही है।

अनुभवति हि मूर्ध्ना पादपस्तीव्रमुष्णं
शमयति परितापं छायया संश्रितानाम्। - *अभिज्ञा.*
वृक्ष अपने सिर पर सूर्य की प्रचण्ड धूप सहता है, किन्तु अपने आश्रितों की गर्मी अपनी छाया से दूर करता है।

अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्॥ - *पञ्च.*
अठारह पुराणों में वेदव्यास ने दो ही मुख्य बातें कही हैं–परोपकार से पुण्य होता है और परपीड़न से पाप।
परहित सरिस धरम नहिं भाई। परपीड़ा सम नहिं अधमाई॥

उपकारः प्रत्युपकारेण निर्यातयितव्यः।
उपकार का बदला उपकार से चुकाना चाहिए।

धनानि जीवितं चैव परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत्। - *हितो.*
बुद्धिमान् व्यक्ति को चाहिए कि वह अपना धन और जीवन परोपकार में लगा दे।

नहि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति। - *सु.र.भा.*
अपने प्रति किए गए उपकार को सज्जन भूलते नहीं हैं।

नहि स्वदेहशैत्याय जायन्ते चन्दनद्रुमाः। - *सु.र.भा.*
चन्दन के पेड़ अपने को ठण्डक पहुंचाने के लिए उत्पन्न नहीं होते हैं।

परं परोपकारार्थं यो जीवति स जीवति। - *सु.र.भा.*
दूसरों और दूसरों के उपकार के लिए जो जीता है, वही वास्तव में जीता है।

परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः परोपकाराय वहन्ति नद्यः।
परोपकाराय दुहन्ति गावः परोपकारार्थमिदं शरीरम्॥
- *विक्रमचरितम्*

दूसरों का भला करने के लिए ही पेड़ फल उगाते हैं। दूसरों का भला करने के लिए ही नदियां पानी बहाती हैं। दूसरों का भला करने के लिए ही गाएं दूध देती हैं। यह मनुष्य-शरीर भी परोपकार के लिए है।

परोपकाराय सतां विभूतयः। - *समयो.*
सज्जनों की सम्पत्तियाँ परोपकार के लिए होती हैं।

विभाति कायः करुणापराणां परोपकारैर्न तु चन्दनेन। - *भर्तृ.*
दयालु लोगों का शरीर परोपकार से सुशोभित होता है, चन्दन से नहीं।

सर्वभूतोपकाराच्च किमन्यत्सुकृतं परम्। - *कथा.*
सब प्राणियों के प्रति उपकार से अधिक पुण्यकारी क्या है ?

स्वार्थो यस्य परार्थ एव स नृणामग्रणीः। - *भर्तृ.*
परार्थ ही जिसका स्वार्थ है, वही नरों में श्रेष्ठ है।

विद्या

अक्षरशून्यो ह्यन्धो भवति।
निरक्षर अन्धा सा है।

अनभ्यसतो नश्यत्यधीतं धीमतामपि।
अभ्यास न करने से बुद्धिमान् का भी पढ़ा हुआ भूल जाता है।

अनभ्यासे विषं विद्या। - *हितो.*
अभ्यास के न रहने पर विद्या विष के तुल्य हो जाती है।

अभ्याससारिणी विद्या।
विद्या अभ्यास से आती है।
करत करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान।

अलसस्य कुतो विद्या।
आलसी को विद्या कहाँ ?

अल्पविद्या भयङ्करी।
कम विद्या खतरनाक है।
नीम हकीम खतरा-ए-जान।

अविद्यं जीवनं शून्यम्। - *चाण.*
विद्या के विना जीवन व्यर्थ है।

किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या। - *भोज.*
कल्पवृक्ष की भांति विद्या क्या-क्या सिद्ध नहीं करती ?

किं कुलेन विशालेन विद्याहीनस्तु यो नरः।
उत्तम कुल में जन्म लेने से क्या हुआ, यदि विद्या से रहित रहा ?

किं जीवितेन पुरुषस्य निरक्षरेण। - *भर्तृ.*
विना पढ़े मनुष्य के जीने से क्या लाभ ?

क्षणत्यागे कुतो विद्या कणत्यागे कुतो धनम्। - *समयो.*
क्षण व्यर्थ छोड़ने पर विद्या कहाँ और कण व्यर्थ छोड़ने पर धन कहाँ ?

ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समानाः। - *चाण.*
ज्ञान से हीन मनुष्य पशु के तुल्य हैं।

धियो यो नः प्रचोदयात्। - *ऋग्वेद.*
सर्वप्रेरक परमात्मा हमारी बुद्धि और कर्मों को सुमार्ग पर प्रेरित करें।

न च विद्यासमो बन्धुः। - *समयो.*
विद्या के समान कोई बन्धु नहीं है।

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते। - *गीता*
संसार में ज्ञान के समान पवित्र और कोई (वस्तु या तत्त्व) नहीं है।

नास्ति ज्ञानात्परं सुखम्। - *चाण.*
ज्ञान से बढ़कर कोई सुख नहीं है।

नीचादप्युत्तमां विद्याम्। - *मनु./चाण.*
नीच से भी उत्तम विद्या को ग्रहण करना चाहिए।

पिण्डे पिण्डे मतिर्भिन्ना। - *सु.र.भा.*
हर शरीरधारी की बुद्धि अलग-अलग होती है।
जितने लोग उतने मत।

पुस्तकेषु च या विद्या परहस्तेषु यद् धनम्।
उत्पन्नेषु च कार्येषु न सा विद्या न तद् धनम्॥ - *चाण.*
पुस्तकों में ही रखी विद्या और पराए हाथ में गया धन - ये दोनों समय पर प्रयोग में नहीं आ पाते हैं, अतः न वह विद्या है और न वह धन है।

बुद्धिः कर्मानुसारिणी। - *चाण.*
बुद्धि कर्मों के अनुसार हो जाती है।

बुद्धेः फलमनाग्रहः। - *सु.र.भा.*
बुद्धि का फल यही है कि किसी बात में हठ न की जाए।

यस्य प्रज्ञामयं चक्षुश्चक्षुष्मान् स नरः स्मृतः। - *बुद्ध.*
जिसके प्रज्ञारूपी चक्षु हैं, वही व्यक्ति वास्तव में चक्षुयुक्त कहा जा सकता है।

वरं बुद्धिर्न सा विद्या विद्याया बुद्धिरुत्तमा। - *पञ्च.*
बुद्धि श्रेष्ठ है विद्या नहीं, क्योंकि विद्या की अपेक्षा बुद्धि बड़ी होती है।

विदेशेषु धनं विद्या। - *सुभा.*
व्यक्ति की विद्या ही विदेशों में उसका धन होती है।

विद्ययामृतमश्नुते। - *ईशा.*
मनुष्य विद्या से अमृतस्वरूप परमात्मा को प्राप्त कर लेता है।

विद्यातुराणां न सुखं न निद्रा। - *सु.र.भा.*
विद्या के लिए आतुर व्यक्ति को कहाँ सुख, कहाँ नींद।

विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम्। - *हितो.*
विद्या से विनम्रता आती है और विनम्रता से योग्यता।
यथा नवहिं बुध विद्या पाए।

विद्याधनं सर्वधनप्रधानम्। - *प्रसङ्गा.*
विद्याधन सभी प्रकार के धनों में प्रमुख है।

विद्या परं दैवतम्। - *भर्तृ.*
विद्या ही परम देवता है।

विद्या भोगकरी यशःसुखकरी विद्या गुरूणां गुरुः। - *भर्तृ.*
विद्या भोग, यश और सुख को देने वाली है। वह गुरुओं की भी गुरु है।

विद्या मित्रं प्रवासेषु। - *चाण.*
विद्या परदेश में मित्र है।

विद्यां गुप्तं धनं स्मृतम्।
विद्या छिपा हुआ धन है।

विद्या रूपं कुरूपाणाम्। - *सु.र.भा.*
विद्या कुरूप का रूप है।

विद्याविहीनः पशुः। - *भर्तृ.*
विद्या के विना मनुष्य पशु जैसा है।

विद्यासमं नास्ति शरीरभूषणम्।
विद्या के समान शरीर का आभूषण नहीं है।

विद्याहीना न शोभन्ते निर्गन्धा इव किंशुकाः। - *हितो./चाण.*
विद्याहीन व्यक्ति उसी प्रकार सुशोभित नहीं होते हैं, जैसे विना सुगन्ध के पलाश के पुष्प।

शीलवित्तफलं श्रुतम्। - *पञ्च.*
शास्त्रज्ञान से आचार और धन की प्राप्ति होती है।

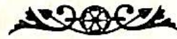
सर्वस्य लोचनं शास्त्रं यस्य नास्त्यन्ध एव सः। - *सु.र.भा.*
शास्त्र सबके लिए नेत्र है, जिसने शास्त्र नहीं पढ़ा वह निश्चय ही अन्धा है।

सर्वस्यौषधमस्ति शास्त्रविहितम्। - *पञ्च.*
शास्त्रों में बताया गया ज्ञान सभी लोगों के लिए ओषधि के समान उपकारक है।

सा विद्या या विमुक्तये।
विद्या वही है, जो मुक्ति के लिए हो।

सुखार्थिनः कुतो विद्या कुतो विद्यार्थिनः सुखम्। - *चाण.*
सुख चाहने वाले को विद्या और विद्या चाहने वाले को सुख कहाँ मिल सकता है ?

सिद्धिर्भूषयते विद्याम्। - *चाण.*
सफलता विद्या को विभूषित करती है।



भाव एवं गुण-विषयक

स्वभाव

अङ्गारः शतधौतेन मलिनत्वं न मुञ्चति।
सौ बार धोने पर भी कोयला कालेपन को नहीं छोड़ता है।
कोयला होय न ऊजरो सौ मन साबुन लाय।

अतीत्य हि गुणान्सर्वान् स्वभावो मूर्ध्नि तिष्ठति। - *हितो.*
स्वभाव सब गुणों को लांघकर सिर पर सवार रहता है।

अनुहुङ्कुरुते घनध्वनिं नहि गोमायुरुतानि केसरी। - *शिशु.*
सिंह मेघ के गरजने का जवाब देता है, सियारों की चिल्लाहट का जवाब नहीं देता।

आकण्ठजलमग्नोऽपि श्वा लिहत्येव जिह्वया। - *सु.र.भा.*
गले तक जल में डूबा हुआ भी कुत्ता जीभ से चाट कर ही पीता है।
आदत सिर के साथ जाती है।

आजन्म उन्मज्जतु दुग्धसिन्धौ तथापि काकः किल काक एव।
कौआ चाहे जन्म से ही दूध में डूबा रहे, लेकिन वह कौआ (काला) ही रहता है।
दुष्ट के स्वभाव में परिवर्तन असम्भव है।

उत्सवप्रियाः खलु मनुष्याः। - *अभिज्ञा.*
मनुष्य स्वभाव से उत्सव पसन्द करते हैं।

एकोदरसमुद्भूता एकनक्षत्रजातकाः ।
न भवन्ति समाः शीलैर्यथा बदरिकण्टकाः॥ - *चाण.*
एक ही गर्भ से उत्पन्न हुए और एक ही नक्षत्र में पैदा हुए लोग भी समान

स्वभाव के नहीं होते हैं - जैसे बेर का फल और बेर के कांटे।

काकः काकः पिकः पिकः।
कौआ कौआ है और कोयल कोयल है। समान वर्ण के होने पर भी कौआ कोयल नहीं हो सकता।

काकः सर्वरसान्भुङ्क्ते विना मेध्यं न तुष्यति।
कौआ चाहे सब रसों का भोजन करे, किन्तु अपवित्र वस्तु खाये विना वह तृप्त नहीं होता।
जाति-स्वभाव न छूटे।

कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु। - *मेघ.*
कामातुर व्यक्ति चेतन और अचेतन के विवेक में स्वभाव से असमर्थ होता है।

किं मर्दितोऽपि कस्तूर्या लशुनो याति सौरभम्। - *सु.र.भा.*
कस्तूरी मलने से क्या लहसुन सुगन्धित हो सकता है?

दुग्धधौतोऽपि किं याति वायसः कलहंसताम्। - *सु.र.भा.*
दूध से नहाने पर भी क्या कौआ हंस हो सकता है?

न प्राणान्ते प्रकृतिविकृतिर्जायते चोत्तमानाम्। - *सु.र.भा.*
उत्तम पुरुषों की प्रकृति में विकार मरणपर्यन्त नहीं होता।
शेर भूखा मर जाता है, परन्तु घास नहीं खाता।

न स्वभावोऽत्र मर्त्यानां शक्यते कर्तुमन्यथा। - *पञ्च.*
इस संसार में जीवों के स्वभाव को बदलना सम्भव नहीं है।

नहि कस्तूरिकामोदः शपथेन विभाव्यते। - *समयो.*
कस्तूरी की सुगन्ध सौगन्ध खाने से सिद्ध नहीं होती है, अपितु वह तो स्वयं सिद्ध है। अच्छी वस्तु स्वयं ही प्रसिद्ध हो जाती है।
कस्तूरी की गंध सौगंध की हाजत नहीं रखती।

प्रकृतिः खलु सा महीयसः सहते नान्यसमुन्नतिं यया। - *किरात.*
बड़ों का यह स्वभाव है कि वे किसी के अभ्युदय को नहीं सहते।
बड़े पेड़ के साये में छोटा पेड़ नहीं पनपता।

भूयोऽपि सिक्तः पयसा घृतेन न निम्बवृक्षो मधुरत्वमेति। - *चाण.*
दूध अथवा घी से बार-बार सींची गई नीम भी मीठी नहीं हो सकती है।
नीम न मीठी होय सींच गुड़ घी से।

भूषाभिः किं सुन्दरो यः प्रकृत्या।
जो स्वयं सुन्दर है, उसे आभूषणों से क्या ?

मधुना सिंचयेन्नित्यं निम्बः किं मधुरायते।
मधु से नित्य सींचने पर क्या नीम मीठी हो जाती है?
स्वभाव जैसा है, वैसा ही रहता है।

मनुष्याः स्खलनशीलाः।
भूल करना मनुष्य का स्वभाव है।

महान्महत्स्वेव करोति विक्रमम्। - *पञ्च.*
महान् का यह स्वभाव है कि वह महान् पर ही अपनी शक्ति प्रकट करता है।

महीयांसः प्रकृत्या मितभाषिणः। - *शिशु.*
महापुरुष स्वभाव से कम बोलने वाले होते हैं।

याचको याचकं दृष्ट्वा श्वानवद् गुर्गुरायते। - *सु.र.भा.*
याचक याचक को देखकर कुत्ते की तरह भौंकने लगता है। समान उद्योग वाले एक दूसरे को नहीं सहते।
१. कुत्ता कुत्ते का बैरी है।
२. वामन कुक्कर नाऊ, आपन जाति देखि गुर्राऊ।

या यस्य प्रकृतिः स्वभावजनिता केनापि न त्यज्यते। - *सु.र.भा.*
जिसकी जो स्वाभाविक प्रकृति है, वह छोड़ी नहीं जाती।
जाको जौन स्वभाव जाय नहि जी से।

यो यस्य नित्यमासन्नः प्रकृतिज्ञो हि तस्य सः।
जो जिसके पास सदा रहता है, वही उसका स्वभाव जानता है।

श्वा यदि क्रियते राजा स किं नाश्नात्युपानहम्। - *हितो.*
कुत्ते को यदि राजा बना दिया जाए तो क्या वह जूते को दांतों से नहीं चबाएगा ?
प्रकृति कभी नहीं छूटती।

सरित्पतिर्नहि समुपैति रिक्तताम्। - *शिशु.*
सरिताओं का स्वामी समुद्र कभी खाली नहीं होता।

सरित्पूरप्रपूर्णोऽपि क्षारो न मधुरायते। - *सु.र.भा.*
इतनी नदियों के मिलने पर भी खारा समुद्र मीठा नहीं होता।

सुतप्तमपि पानीयं पुनर्गच्छति शीतताम्। - *पञ्च.*
खौलता हुआ पानी भी आग से उतारने के बाद ठण्डा हो ही जाता है।
स्वभाव बदलना बड़ा कठिन है।

सुतप्तमपि पानीयं शमयत्येव पावकम्। - *पञ्च.*
खौलता हुआ भी पानी आग को बुझाता है।
आदत सिर के साथ जाती है।

स्त्रीस्वभावस्तु कातरः। - *स्वप्न.*
अधीर होना नारियों का स्वभाव है।

स्वभावं नैव मुञ्चन्ति सन्तः संसर्गतोऽसताम्।
न त्यजन्ति रुतं मञ्जु काकसंपर्कतः पिकाः॥ - *दृष्टान्तशतकम्*
सज्जन व्यक्ति दुष्टों के सम्पर्क में आने से अपना अच्छा स्वभाव नहीं छोड़ते, जैसे कोयलें कौएं का साथ होने पर भी अपनी मधुर कूक नहीं छोड़ती।

स्वभावो यादृशो यस्य न जहाति कदाचन। - *चाण.*
जिस व्यक्ति का जो स्वभाव है, उसे वह कभी नहीं छोड़ता।

स्वभावो हि दुरतिक्रमः। - *हितो.*
स्वभाव नहीं बदला जा सकता है।
कुत्ते की पूँछ बारह वर्ष नली में रखो, तो भी टेढ़ी की टेढ़ी।

कीर्ति

अनन्यगामिनी पुंसां कीर्तिरेका पतिव्रता। - *सु.र.भा.*
मनुष्य की अपनी कीर्ति ही एक ऐसी पतिव्रता है, जो कभी दूसरे के साथ नहीं जाती।

कीर्तिर्यस्य स जीवति। - *सु.र.भा.*
जिसकी कीर्ति है, वही जीता है।

कीर्तिस्त्यागानुसारिणी।
कीर्ति त्याग के अनुसार मिलती है।

क्षितितले किं जन्म कीर्तिं विना। - *सु.र.भा.*
पृथिवी पर कीर्ति के विना जन्म लेने का क्या लाभ ?

न तस्य प्रतिमा अस्ति, यस्य नाम महद् यशः। - *यजु.*
जिसका नाम महान् 'यश' है, उसके समान कोई नहीं है।

स्थिरं तु महतामेकमाकल्पममलं यशः। - *कथा.*
महापुरुषों का केवल निर्मल यश ही वर्तमान सृष्टि के अन्त तक स्थिर रहता है।

अपकीर्ति

अपयशो यद्यस्ति किं मृत्युना।
यदि अपयश है तो फिर मृत्यु से क्या ?

अपवाद एव सुलभो वक्तुर्गुणो दूरतः।
वक्ता को अपयश ही सुलभ है, यश तो बहुत दुर्लभ है।

अयशोभीरवः किं न कुरुते बत साधवः। - *कथा.*
लोक में अपयश के भय से सज्जन लोग क्या-क्या नहीं करते ?

सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते। - *गीता*
माननीय मनुष्य के लिए अपकीर्ति मरण से भी अधिक बुरी होती है।
अपयश से मौत भली।

सहते विरहक्लेशं यशस्वी नायशः पुनः। - *कथा.*
यशस्वी मनुष्य विरह का कष्ट सह लेता है, किन्तु वह अपयश नहीं सह सकता है।

सुख/दुःख

अनागतं यः कुरुते स शोभते। - *पञ्च.*
जो मनुष्य आने वाले संकट के बचाव का उपाय कर लेता है, वही सुखी रहता है।

अश्नुते स हि कल्याणं व्यसने यो न मुह्यति। - *कथा.*
जो मुसीबत या दुःख से नहीं घबराता, वह संसार में सुख पाता है।

इष्टप्रवासजनितान्यबलाजनस्य दुःखानि नूनमतिमात्रसुदुःसहानि।
- *अभिज्ञा.*
वस्तुतः स्त्रियों को अपने प्रेमी व्यक्ति के परदेश-गमन से उत्पन्न दुःख अत्यन्त असह्य हुआ करते हैं।

इष्टमूलानि शोकानि। - *सु.र.भा.*
शोक के मूल में प्रिय (वस्तु या व्यक्ति) होता है।

इष्टे इष्टे हि दुःखार्ता न दुःखं धर्तुमुत्सहे। - *हेमचन्द्रः*
दुःखी व्यक्ति इष्ट मित्र को देखकर अपना दुःख नहीं सम्भाल पाता।

कस्य सौख्यं निरन्तरम्।
सदा सुख ही सुख किसे मिला है ?
ईश्वर की माया, कहीं धूप कहीं छाया।

कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा। - *मेघ.*
किसे हमेशा सुख मिला है और किसे हमेशा दुःख ही मिला है। सुख-दुःख सबके साथ लगे हुए हैं।
हर रोज़ ईद कहाँ ?

चक्रवत् परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च। - *महा.*
मनुष्य के जीवन में सुख और दुःख चक्र के समान घूमते रहते हैं।
दुःख के बाद सुख आता है।

दुःखिते मनसि सर्वमसह्यम्।
मन दुःखी होने पर कुछ अच्छा नहीं लगता है।

दुःखे कालः सुदीर्घो हि सुखे लघुतरः सदा। - *योग.*
काल सदा ही दुःख के समय बहुत बड़ा हो जाता है और सुख के समय बहुत छोटा हो जाता है।

न शान्तेः परमं सुखम्। - *सु.र.भा.*
शान्ति से बढ़कर सुख नहीं है।

न हि सुखं दुःखैर्विना लभ्यते।
विना दुःख के सुख नहीं मिलता है।
बिन सेवा मेवा नहीं।

नाऽकृत्वा सुखमेधते। - *महा.*
विना कर्तव्य किए कोई मनुष्य सुख प्राप्त नहीं करता है।

पूर्वावधीरितं श्रेयो दुःखं हि परिवर्तते। - *अभिज्ञा.*
निश्चय ही पहले तिरस्कार किया गया कल्याण दुःख में बदल जाता है।

भैषज्यमेतद् दुःखस्य यदेतन्नानुचिन्तयेत्। - *महा.*
मन से दुःखों का चिन्तन न करना ही दुःखों के निवारण की ओषधि है।

यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति। - *तैत्ति.उप.*
असीम में ही सुख है। सीमित में सुख नहीं है।

राकाचन्द्रस्य सौन्दर्यं वर्तते न सदा समम्।
रात के चन्द्रमा की सुन्दरता सदा एक सी नहीं रहती।
चार दिन की चाँदनी फिर अँधेरी रात।

विवक्षितं ह्यनुक्तमनुतापं जनयति। - *अभिज्ञा.*
जिस बात को हम कहना चाहते हैं, वह न कही जाए तो कष्ट उत्पन्न करती है।

सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम्।
एतत् विद्यात् समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः॥ - *मनु./समयो.*
सब कुछ दूसरे के वश में होना दुःख है और सब कुछ अपने वश में होना सुख है। संक्षेप में इसे ही दुःख और सुख का लक्षण समझना चाहिए।
पराधीन सपनेहुं सुख नाहीं।

सुखं हि दुःखान्यनुभूय शोभते। - *चारु.*
दुःखों का अनुभव करके ही सुख अच्छा लगता है।

सुखमास्ते निस्पृहः पुरुषः।
कामना से विहीन मनुष्य सुखी रहता है।

सुखमूलं सुसन्ततिः।
सन्तान अच्छी हो तो सुख ही सुख है।
अच्छी सन्तान सुख की खान।

सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता।
सुख और दुःख कोई दूसरा देता है - ऐसा समझना ठीक नहीं है।

स्निग्धजनसंविभक्तं हि दुःखं सह्यवेदनं भवति। - *अभिज्ञा.*
स्नेही जनों में बांटा गया दुःख सहन करने योग्य हो जाता है।

स्नेहमूलानि दुःखानि। - *महा.*
दुःखों के मूल में स्नेह होता है।

स्मृत्वा स्मृत्वा याति दुःखं नवत्वम्। - *स्वप्न.*
बार-बार स्मरण करने से दुःख नया होता जाता है।

स्वजनस्य हि दुःखमग्रतो विवृतद्वारमिवोपजायते। - *कुमार.*
अपने लोगों को देखते ही दुःख ऐसे बाहर निकल पड़ता है, जैसे हृदय के किवाड़ खुल गए हों।

हेयं दुःखमनागतम्। - *योगसूत्रम्*
जो दुःख अभी तक आया नहीं है, वह दूर किया जा सकता है।

विश्वभावना

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥ - *हितो./पञ्च.*
यह अपना, यह पराया—ऐसा विचार छोटे हृदय वाले लोग करते हैं। उदार चरित्र वाले मनुष्यों के लिए समस्त संसार ही एक परिवार है।

आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः। - *हितो.*
जो अपने समान सभी प्राणियों को देखता है, वही समझदार है।

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्। - *ऋग्वेद.*
सब आर्य हों।

यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्। - *यजु.*
ब्रह्म में यह सम्पूर्ण विश्व एक घर के समान एकाकार हो जाता है।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्॥
सभी सुखी हों। सभी निरोगी हों। सभी कल्याणों को देखें। कोई भी दुःख को प्राप्त न करे।

सह नाववतु, सह नौ भुनक्तु, सह वीर्यं करवावहै। - *यजु.*
परमात्मा हम दोनों (गुरु-शिष्य) की साथ-साथ रक्षा करे। हम दोनों का साथ-साथ पालन करे। हम दोनों साथ ही शक्ति प्राप्त करें।

एकता

अल्पानामपि वस्तूनां संहतिः कार्यसाधिका। - *हितो.*
छोटों की एकता भी किसी कार्य को सिद्ध करने वाली होती है।

एकचित्ते द्वयोरेव किमसाध्यं भवेदिति। - *कथा.*
यदि दो मनुष्यों का मन मिल जाए तो वे क्या नहीं कर सकते ?
एक और एक ग्यारह होते हैं।

नेह नानास्ति किञ्चन। - *बृह.उप.*
इस लोक में जीव मात्र में किसी तरह का भेद नहीं है।

पञ्चभिर्मिलितैः किं यज्जगतीह न साध्यते। - *नैषध.*
पांच आदमी मिल जाएं तो इस जगत् में क्या नहीं कर सकते ?

बहूनामप्यसाराणां समवायो हि दुर्जयः।
तृणैर्विधीयते रज्जुर्बध्यन्ते मत्तदन्तिनः ॥ - *पञ्च.*
बहुत सी शक्तिहीन वस्तुओं का समूह अजेय हो जाता है। तिनके की रस्सी बट जाने पर मतवाला हाथी भी उससे बँध जाता है।

बहूनां चैव सत्त्वानां समवायो रिपुञ्जयः। - *चाण.*
बहुत से (कमजोर) प्राणियों का समूह निश्चय ही शत्रु को जीत लेता है।

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्। - *ऋग्वेद.*
तुम सब परस्पर मिलकर चलो, परस्पर मिल कर प्रेम से वार्तालाप करो। तुम लोगों का मन समान होकर ज्ञान प्राप्त करें।

सङ्घे शक्तिः कलौ युगे।
कलियुग में एकता में बड़ी शक्ति है।

समवायो दुरत्ययः। - *भोज.*
संगठितों का सामना करना बड़ा कठिन है।

पराधीनता

कष्टं खलु पराश्रयः। - *सु.र.भा.*
दूसरे के अधीन रहना कष्टकारक होता है।
पराधीन सपनेहुं सुख नाहीं।

कष्टादपि कष्टतरं परगृहवासः परान्नं च। - *सु.र.भा.*
दूसरे के घर में रहना और दूसरे का अन्न खाना कष्ट से भी अधिक कष्टदायक है।

कष्टा वृत्तिः पराधीना।
दूसरे के अधीन रहने वाली जीविका कष्टकारक होती है।

धिगस्तु परवशताम्। - *रामा.*
परवशता को धिक्कार है।

पराधीने परं दुःखं स्वाधीने च महत्सुखम्। - *बुद्ध.*
पराधीनता में परम कष्ट है और स्वाधीनता में महान् आनन्द है।
अपना हाथ जगन्नाथ।

गुण

अगुणस्य हतं रूपम्। - *सु.र.भा.*
गुणहीन होकर रूपवान् होने से क्या लाभ ?

इन्द्रोऽपि लघुतां याति स्वयं प्रख्यापितैर्गुणैः। - *चाण.*
स्वयं अपने गुणों का बखान करने से इन्द्र भी छोटा हो जाता है।
अपने मुंह मियां मिट्ठू बनना।

एको गुणः किल निहन्ति समस्तदोषान्। - *चाण.*
निश्चय ही एक महत्त्वपूर्ण गुण सब दोषों को छिपा देता है।

एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः।

- कुमार.

बहुत से गुणों में एक दोष छिप जाता है, जैसे चन्द्रमा की किरणों में उसका कलंक छिपा रहता है।

कमीशते रमयितुं न गुणः। *- किरात.*

गुण किसे प्रसन्न नहीं कर लेता है?

गुणदोषमयं सर्वं स्रष्टा स्रजति कौतुकी।

विधाता ने कौतुक में सब कुछ गुण और दोष से युक्त बनाया है।

गुणा गुणज्ञेषु गुणा भवन्ति ते निर्गुणं प्राप्य भवन्ति दोषाः।

- हितो.

गुणों को जानने वालों में ही गुण 'गुण' रहते हैं, अन्यथा निर्गुणी को पाकर वे 'दोष' हो जाते हैं।

गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः। *- उत्तर.*

गुणियों में गुण पूजा का स्थान हैं, लिंग और आयु नहीं।

गुणाः प्रियत्वेऽधिकृता न संस्तवः। *- किरात.*

प्रिय होने में गुण ही कारण हैं, व्यर्थ की प्रशंसा नहीं।

गुणाः सर्वत्र पूज्यन्ते न महत्योऽपि सम्पदः। *- चाण.*

गुण सर्वत्र पूजे जाते हैं, बड़ी सम्पत्तियां नहीं।

गुणी गुणं वेत्ति न वेत्ति निर्गुणः। *- मनु.*

गुणवान् गुण को जानता है, गुणहीन गुण को नहीं जानता।

हीरे की कदर जौहरी जाने।

गुणी च गुणरागी च विरलः सरलो जनः। *- सु.र.भा.*

गुणवान् हो और गुणों का आदर भी करता हो - ऐसा सरल मनुष्य विरला ही होता है।

गुणेषु क्रियतां यत्नः किमाटोपैः प्रयोजनम्। - *शा.प.*
गुणों के लिए प्रयत्न किया जाना चाहिए, बाह्य आडम्बर से क्या?

गुणेषु यत्नः पुरुषेण कार्यो न किञ्चिदप्राप्यतमं गुणानाम्।
- *मृच्छ.*

मनुष्य को सदा गुणों के लिए प्रयत्न करना चाहिए, क्योंकि गुणी मनुष्यों के द्वारा कुछ भी पाना असम्भव नहीं है।

गुणेष्वेव हि कर्तव्यः प्रयत्नः पुरुषैः सदा। - *मृच्छ.*
मनुष्यों के द्वारा सदैव गुणों के लिए ही प्रयत्न किया जाना चाहिए।

गुणैरुत्तमतां यान्ति नोच्चैरासनसंस्थितैः। - *चाण./पञ्च.*
मनुष्य गुणों से उत्तमता को प्राप्त करते हैं, ऊंचे आसन पर बैठने से नहीं।

गुणो भूषयते रूपम्। - *चाण.*
गुण सौन्दर्य का आभूषण है।
रूप और गुण का साथ सोने में सुगन्ध जैसा है।

गुणो हि गौरवस्थानं न रूपं न धनं तथा।
गुण ही प्रतिष्ठा का स्थान है, रूप और धन नहीं।

गुरुतां नयन्ति हि गुणा न संहतिः। - *किरात.*
गुणों से गुरुता होती है, न कि बाह्य आकार से।
जैसे सुवर्ण और रूई।

तद् रूपं यत्र गुणाः। - *गाथा.*
वही रूप है, जहाँ गुण हैं।

नम्रन्ति गुणिनो जनाः नम्रन्ति फलिनो वृक्षाः।
गुणवान् लोग विनम्र होते हैं और फलभार से पेड़ झुक जाते हैं।

निर्गुणस्य हतं रूपम्। - *चाण.*
गुणरहित पुरुष की सुन्दरता निरर्थक है।

नैकत्र सर्वो गुणसन्निपातः।
सब गुण एक स्थान पर नहीं रहते।

पदं हि सर्वत्र गुणैर्निधीयते। - *रघु.*
गुण ही सर्वत्र अपना आदर करा लेता है।

प्रायेण सामग्र्यविधौ गुणानां पराङ्मुखी विश्वसृजः प्रवृत्तिः।
- *कुमार.*
प्रायः सब गुणों का किसी एक में समावेश करने के विपरीत विधाता की प्रवृत्ति होती है।

मर्दनं गुणवर्धनम्। - *सु.र.भा.*
मर्दन से गुण बढ़ता है।

यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्ति। - *सु.र.भा.*
जहाँ आकृति है, वहाँ गुण होते हैं।

यथा नाम तथा गुणः।
जैसा नाम वैसा गुण।

यदि सन्ति गुणाः पुंसां विकसन्त्येव ते स्वयम्। - *समयो.*
यदि मनुष्य के अन्दर गुण हैं तो वे स्वयं ही विकसित होते हैं।
लाल गुदड़ी में नहीं छिपता।

रूपस्याभरणं गुणः। - *चाण.*
रूप का आभूषण गुण है।

वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तुनि। - *किरात.*
गुण प्रेम में निवास करते हैं, वस्तु में नहीं।

शत्रोरपि गुणा ग्राह्या दोषा वाच्या गुरोरपि। - *महा.*
शत्रु के गुणों को भी ग्रहण करना चाहिए और गुरु के दोष भी बताने चाहिए।

शत्रोरपि सुगुणो ग्राह्यः। - *चाण.सू.*
शत्रु का भी सद्गुण ग्रहण करने योग्य है।

सन्तः स्वतः प्रकाशन्ते गुणा न परतो नृणाम्। - *सु.र.भा.*
मनुष्यों में विद्यमान गुण अपने आप प्रकाशित होते हैं। गुणों का कोई अन्य प्रकाशक नहीं होता।

सुलभा रम्यता लोके दुर्लभं हि गुणार्जनम्। - *किरात.*
संसार में सौन्दर्य सुलभ है, किन्तु गुणों को प्राप्त करना कठिन है।

बल

चौराणामनृतं बलम्। - *सु.र.भा.*
चोरों के लिए झूठ ही बल है।

तुल्ये बले तु बलवान्परिकोपमेति। - *पञ्च.*
शक्तिशाली व्यक्ति अपने समान शक्तिशाली व्यक्ति पर ही क्रोध प्रकट करता है।

दुर्बलस्य बलं राजा। - *हितो.*
दुर्बल का बल राजा है।
निर्बल के बल राम।

धिग् बलं क्षत्रियबलं ब्रह्मतेजो बलं बलम्। - *महा.*
क्षत्रियबल (अर्थात् शारीरिक बल) तो नाममात्र का बल है, उसे धिक्कार है। ब्रह्मतेजजनित बल (अर्थात् बुद्धि) ही वास्तविक बल है।

नास्ति चात्मसमं बलम्। - *चाण.*
अपने समान कोई बल नहीं है।

प्रज्ञा नाम बलं तस्मान्निष्प्रज्ञस्य बलेन किम्। - *कथा.*
बुद्धि ही वास्तविक बल है, बुद्धिहीन का बल से क्या प्रयोजन ?

बलं मूर्खस्य मौनित्वम्। - *सु.र.भा.*
चुप रहना ही मूर्ख के लिए बल है।

बलवानपि निस्तेजाः कस्य नाभिभवास्पदम्। - *कथा.*
निस्तेज बलवान् को भी कौन नहीं दबा लेता है ?

बली बलं वेत्ति न वेत्ति निर्बलः। - *सु.र.भा.*
बलवान् ही बलवान् को पहचानता है, निर्बल क्या पहचानेगा ?
हीरे की परख जौहरी ही जाने।

बलीयसी केवलमीश्वरेच्छा। - *महा.*
सबसे अधिक बलवान् केवल ईश्वर की इच्छा है।

बलेन किं यश्च रिपून्न बाधते।
उसके बल से क्या, जिसने शत्रु को पीड़ा न पहुंचाई ?

बालानां रोदनं बलम्। - *सु.र.भा.*
बालकों का बल रोना है।
बालक को बल रोदन एका।

बाहू मे बलमिन्द्रियम्। - *यजु.*
मेरी दो भुजाएं बल और ऐश्वर्य हैं।

मशकस्य बलं कियत्।
मच्छर का बल ही कितना ?
मच्छर की क्या बिसात।

यस्य बुद्धिर्बलं तस्य निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम्। - *पञ्च.*
जिसके पास बुद्धि है, उसी के पास बल है। बुद्धिरहित पुरुष के पास बल कहाँ ? *
अकल बड़ी कि भैंस ?

* जैसे पञ्चतन्त्र में प्राप्त सिंह और शशक की कथा में शक्तिशाली शेर एक निर्बल किन्तु बुद्धिमान् खरगोश द्वारा मार डाला गया था।

रूपयौवनमाधुर्यं स्त्रीणां बलमनुत्तमम्। - *चाण.*
रूप, यौवन और मधुर भाषण स्त्रियों का उत्तम बल है।

वीरभोग्या वसुन्धरा।
वीर पुरुष ही पृथिवी का भोग करते हैं।
जिसकी लाठी उसकी भैंस।

हिंसा बलमसाधूनाम्। - *महा.*
हिंसा दुष्टों का बल है।

पुरुषार्थ/उद्यम

अंशुमानपि नोदेति विना नैशतमोहृतिम्।
रात्रि के अन्धकार को नष्ट किए विना सूर्य देव भी उदित नहीं होते।

अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व। - *ऋग्वेद.*
पांसों से मत खेलो, बस खेती ही करो।

अनुद्यमेन कस्तैलं तिलेभ्यः प्राप्तुमर्हति। - *सु.र.भा.*
विना उद्यम किए कौन तिल से तेल निकाल सकता है ?

अनुद्योगेन तैलानि तिलेभ्यः नाप्तुमर्हति। - *हितो.*
विना परिश्रम के तिलों से तेल प्राप्त नहीं किया जा सकता।

अनुयोगं विना तैलं तिलानां नोपजायते। - *पञ्च.*
मेहनत के विना तिलों का तेल नहीं निकलता।

आरुह्य पर्वतं पान्थः सानौ निर्वृतिमेत्यलम्। - *सु.र.भा.*
पथिक पर्वत पर चढ़ता हुआ चोटी पर पहुंच कर सुख प्राप्त करता है।
परिश्रम का फल मीठा।

आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः। - *भर्तृ.*
मनुष्यों का आलस्य शरीर में रहने वाला महान् शत्रु है।
आलस बुरी बला है।

आलस्यादमृतं विषम्।
आलस्य से अमृत भी विष हो जाता है।

उद्यमेन हि सिद्ध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः।
न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः।। - *हितो./पञ्च.*
उद्योग से ही कार्यों की सिद्धि होती है, केवल मनोरथों से नहीं। सोते हुए सिंह के मुख में मृग स्वयं प्रवेश नहीं करते।

उद्योगः पुरुषलक्षणम्।
उद्योग करना मनुष्य का लक्षण है।

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी-
दैवेन देयमिति कापुरुषा वदन्ति। - *हितो./पञ्च.*
उद्योगी पुरुषसिंह (श्रेष्ठ पुरुष) को लक्ष्मी मिलती है। कायरों का कथन है कि भाग्य से मिलता है
परिश्रम सफलता की कुंजी है।

उद्योगे नास्ति दारिद्र्यम्। - *चाण.*
उद्योग करने पर दरिद्रता नहीं रहती।

कोऽतिभारः समर्थानां किं दूरं व्यवसायिनाम्। - *पञ्च./चाण.*
सक्षम व्यक्तियों के लिए क्या कठिन कार्य है और उद्योगी व्यक्तियों के लिए कौन सा स्थान दूर है ?

चरन् वै मधु विन्दन्ति।
चलता हुआ ही व्यक्ति जीवन के माधुर्य को पाता है।

चरैवेति, चरैवेति। - *ऐत.ब्रा.*
चलते रहो। चलते रहो।

न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः। - *ऋग्वेद.*
परिश्रम न करने वाले के साथ देवता मित्रता नहीं करते।

न स्वयं दैवमादत्ते पुरुषार्थमपेक्षते। - *हितो.*
भाग्य स्वयं कुछ नहीं देता, उसे भी पुरुषार्थ की अपेक्षा रहती है।

नहि दुष्करमस्तीह किञ्चिदध्यवसायिनाम्। - *कथा.*
परिश्रम करने वाले के लिए कुछ भी न कर सकने योग्य नहीं है।

नानाश्रान्ताय श्रीरस्तीति रोहित ! शुश्रुम। - *ऐत.ब्रा.*
हे रोहित ! सुनते हैं कि जो श्रम से थकता नहीं, उसको श्री प्राप्त नहीं होती।

नास्त्युद्यमसमो बन्धुः कुर्वाणो नावसीदति। - *भर्तृ.*
उद्यम के समान कोई बन्धु नहीं है। उद्यम करने वाला व्यक्ति कभी दुःखी नहीं होता।

पुरुषकारमनुवर्तते दैवम्। - *चाण.सू.*
भाग्य पुरुषार्थ का अनुसरण करता है।

यत्नं विना रत्नं न लभ्यते।
परिश्रम किए विना रत्न नहीं मिलता।
सेवा बिन मेवा नहीं।

यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः। - *हितो./पञ्च.*
यत्न करने पर भी यदि काम सिद्ध न हो तो इसमें मनुष्य का क्या दोष ?

यथा बीजं विना क्षेत्रमुप्तं भवति निष्फलम् ।
तथा पुरुषकारेण विना दैवं न सिध्यति ॥ - *महा.*
जैसे खेत में बोए विना कोई भी बीज फल नहीं दे सकता है, वैसे ही पुरुषार्थ के विना दैव सिद्ध नहीं होता।
ईश्वर उनकी सहायता करते हैं, जो अपनी सहायता आप करते हैं।

योजनानां सहस्रं तु शनैर्गच्छेत्पिपीलिका।
अगच्छन्वैनतेयोऽपि पदमेकं न गच्छति॥ - *सु.र.भा.*
चलती हुई चींटी हज़ार योजन दूर निकल जाती है। न चलता हुआ गरुड़ भी एक पग नहीं जा सकता है।

उदात्तभावनाएं

अक्रोधेन जयेत् क्रोधम्। - *धम्मपदम्*
शान्ति धारण करके क्रोध को जीतें।

अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा।
अनुग्रहश्च दानं च शीलमेतत् प्रशस्यते।। - *महा.*
मन, वचन और कर्म से किसी से द्रोह न करना, दया करना और दान देना - यह सब शील कहलाता है।

अभावे विरक्तिः।
न होने पर वैराग्य होता है।

अभावे सति सन्तोषः स्वर्गस्थोऽसौ महीतले।
कुछ न होने पर भी जिसे संतोष है, वह पृथ्वी पर रहकर मानों स्वर्ग का सुख पा रहा है।

अहिंसा परमो धर्मः। - *महा.*
(मन, वाणी और कर्म से) किसी की हिंसा न करना परम धर्म है।

आचारः कुलमाख्याति वपुराख्याति भोजनम्। - *चाण.*
व्यक्ति के आचरण से कुल का पता लगता है और उसके शरीर से भोजन का।

आचारः परमो धर्मः। - *मनु.*
आचार ही परम धर्म है।

आचारः प्रथमो धर्म आचारः परमं तपः। - *समयो.*
आचार से रहना धर्म का प्रथम लक्षण है। आचार ही श्रेष्ठ तपस्या है।

आचाराल्लभते ह्यायुराचाराल्लभते श्रियम्। - *महा.*
सदाचार से मनुष्य आयु और लक्ष्मी को प्राप्त करता है।

आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्। - *पञ्च.*
जो अपने प्रतिकूल लगे, उसे दूसरों के लिए भी नहीं करना चाहिए।

आशा येषां दासी तेषां दासायते लोकः ।
आशा दासीकृता येन तेन दासीकृतं जगत् ।। - *सु.र.भा.*
जिसने आशा को दासी बनाया, उसने जगत् को अपना दास बना लिया।

आशावधिं को गतः।
आशा के छोर तक कौन पहुंच सका है ?

आशा सर्वोत्तमं ज्योतिर्निराशा परमं तपः।
आशा सर्वोत्तम प्रकाश है और निराशा परम तप है।
जब तक साँस तब तक आस।

आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम्। - *भाग.*
आशा परम दुःख है और निराशा परम सुख।

ईश्वरभजनं हितमखिलानाम्।
ईश्वर का भजन सबका कल्याण करने वाला होता है।

उत्साहो बलवानार्य, नास्त्युत्साहात्परं बलम्।
सोत्साहस्य हि लोकेषु न किञ्चिदपि दुर्लभम्।। - *रामा.*
हे आर्य ! उत्साह में बड़ा बल है, उससे बढ़कर दूसरा बल नहीं है।
संसार में उत्साही मनुष्य के लिए कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं है।

उदारस्य तृणं वित्तम्।
उदार व्यक्ति के लिए धन तिनके जैसा है।

औत्सुक्यमात्रमवसाययति प्रतिष्ठा। - *अभिज्ञा.*
प्रतिष्ठा पा लेने पर उसकी प्राप्ति के लिए जो उत्सुकता रहती है, केवल वही शान्त होती है।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः। - *ईशा.*
उस ईश्वर को साथ रखते हुए त्यागपूर्वक भोग करो।

दुःखं त्यक्तुं बद्धमूलोऽनुरागः। - *स्वप्न.*
अत्यन्त दृढ़ प्रेम को भूल जाना कठिन है।

नाहमस्मीति साहसम्।
'हम नहीं हैं' ऐसा समझने वाला ही साहस का काम कर सकता है।

पूर्णेषु पूर्णेषु पुनर्नवानामुत्पत्तयः सन्ति मनोरथानाम्।
मनोरथों के पूरा होने पर दूसरे-दूसरे नये मनोरथ मन में उठते रहते हैं।

प्रायः सर्वो भवति करुणावृत्तिरार्द्रान्तरात्मा। - *मेघ.*
कोमल हृदय वाले व्यक्ति प्रायः करुणापूर्ण वृत्ति से युक्त होते हैं।

प्रायः स्वं महिमानं क्षोभात् प्रतिपद्यते हि जनः। - *अभिज्ञा.*
व्यक्ति प्रायः उत्तेजित होने पर ही अपने पराक्रम को धारण करता है।

प्रायेण हि नरेन्द्रश्रीः सोत्साहैरेव भुज्यते। - *स्वप्न.*
प्रायः उत्साही पुरुष ही राज्यलक्ष्मी का उपभोग करते हैं।

मनोरथानामगतिर्न विद्यते। - *कुमार.*
मनोरथ को कोई नहीं रोक सकता है।
जहाँ चाह है, वहाँ राह है।

यतो रूपं ततः शीलम्।
जहाँ रूप है, वहीं शील है।

विश्वासः फलदायकः।
विश्वास फलदायक होता है।

विश्वासः सम्पदां मूलम्। - *पञ्च.*
विश्वास सम्पत्ति या अभ्युदय का कारण है।

वैराग्येण परां शान्तिम्। - *महा.*
वैराग्य से परम शान्ति मिलती हैं।

शरणमुपेतो न हातव्यः।
शरणागत का त्याग नहीं करना चाहिए।

शीलमेव परं तपः। - *बुद्ध.*
शील ही परम तप है।

शीलं परं भूषणम्। - *भर्तृ.*
शील श्रेष्ठ भूषण है।
न हि शील सम गहना दूजा।

शीलं भूषयते कुलम्। - *चाण.*
शीलवान् अपने कुल को सुशोभित करता है।

शीलं सर्वत्र वै धनम्। - *सुभा.*
शील ही सब कहीं धन होता है।

शीलं हि विदुषां धनम्। - *कथा.*
शील ही विद्वान् पुरुषों का धन है।

श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः। - *ऋग्वेद.*
श्रद्धा से ही अग्नि को प्रज्ज्वलित किया जाता है और श्रद्धा से ही हवन में आहुति दी जाती है।

श्रद्धया देयमश्रद्धयादेयम्। - *तैत्ति.उप.*
श्रद्धा से देना चाहिए। अश्रद्धा से नहीं देना चाहिए।

श्रद्धया सत्यमाप्यते।
श्रद्धा से सत्य ज्ञात होता है।

श्रद्धा पत्नी सत्यं यजमानः। श्रद्धा सत्यं तदित्युत्तमं मिथुनम्।
- *ऐत.ब्रा.*
जीवनरूपी यज्ञ में श्रद्धा पत्नी है और सत्य यजमान है। श्रद्धा और सत्य की उत्तम जोड़ी है।

श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्।
श्रद्धा से सम्पन्न मनुष्य ही ज्ञान प्राप्त करता है।

सत्कारो हि नाम सत्कारेण प्रतीष्टः प्रीतिमुत्पादयति। - *स्वप्न.*
सत्कार निश्चय ही सत्कार से मिलकर परस्पर प्रीति को बढ़ाता है।

सन्तुष्टः सततं सुखी।
संतोषी व्यक्ति सदा सुखी रहता है।
आए की खुशी, न गए का गम।

सन्तुष्टिः परमं धनम्। - *धम्मपदम्*
संतोष ही परम धन है।
जब आवे सन्तोष धन, सब धन धूरि समान।

सन्तोषः परमं सुखम्। - *महा.*
संतोष ही परम सुख है।

सन्तोष एव पुरुषस्य परं निधानम्। - *पञ्च.*
संतोष ही मनुष्य के लिए परम निधि है।

सन्तोषतुल्यं धनमस्ति नान्यत्। - *पञ्च.*
संतोष के समान दूसरा कोई धन नहीं है।

सन्तोषात् न सुखं परम्। - *समयो.*
संतोष से बढ़कर सुख नहीं है।

सन्तोषेण विना पराभवपदं प्राप्नोति सर्वो जनः।
सभी लोग संतोष के विना दुःख को प्राप्त करते हैं।

सन्तोषो वै स्वर्गतमः। - *महा.*
संतोष स्वर्ग से भी बढ़कर है।

सम्भावना ह्यधिकृतस्य तनोति तेजः। - *किरात.*
अधिकार में लगाए गए पुरुष की प्रशंसा उसके तेज या कार्यक्षमता में वृद्धि करती है।

सर्वत्र दाक्षिण्यं न कर्तव्यम्। - *अवि.*
सर्वत्र उदारता से काम नहीं करना चाहिए।

साहसे खलु श्रीर्वसति। - *चारु.*
निश्चय ही साहस में सम्पत्तियां रहती हैं।

सिध्यन्ति कर्मसु महत्स्वपि यन्नियोज्याः सम्भावनागुणमवेहि तमीश्वराणाम्। - *अभिज्ञा.*
महान् कार्यों में भी सेवक की सफलता को स्वामियों का प्रभाव ही समझना चाहिए।

स्तोत्रं कस्य न तृप्तये। - *कुमार.*
प्रशंसा से कौन प्रसन्न नहीं होता है ?

दुर्भावनाएं

अङ्कमारुह्य सुप्तं हि हत्वा किन्नाम पौरुषम्। - *हितो.*
अपनी गोद में सिर रखकर सोए हुए को मारने में क्या पुरुषार्थ है? *विश्वासघात महापाप है।*

अदातरि समृद्धेऽपि किं कुर्युरुपजीविनः।
जिसने देना नहीं जाना, उसके समृद्ध होने से भी उपजीवी लोग क्या लाभ उठा सकते हैं ?

अदाता वंशदोषेण। - *सु.र.भा.*
कृपण होना वंश का दोष है।

अशान्तस्य कुतः सुखम्।
जिसका मन शान्त नहीं, उसे सुख कहाँ ?

अशीलं कस्य भूतये। - *कथा.*
शील से विमुख होकर किसे सम्पत्ति मिली है ?

असन्तुष्टा द्विजा नष्टाः सन्तुष्टाः क्षत्रियर्षभाः। - *चाण.*
असन्तुष्ट ज्ञानी और सन्तुष्ट राजा नष्ट हो जाते हैं।

अहो दुरन्ता बलवद्विरोधिता। - *किरात.*
बलवान् से विरोध का फल बुरा होता है।

ईर्ष्या नाम दुःखैकहेतुः। - *कथा.*
ईर्ष्या दुःख का एकमात्र कारण है।

ईर्ष्या हि विवेकपरिपन्थिनी। - *कथा.*
ईर्ष्या विवेक को नष्ट करने वाली होती है।

कामक्रोधौ हि मनुष्याणां स्वर्गद्वारार्गलावुभौ। - *कथा.*
मनुष्यों के लिए काम और क्रोध स्वर्गद्वार पर लगे दो सांकल के समान हैं।

कामतो जायते शोकः कामतो जायते भयम्। - *धम्मपदम्*
काम से शोक उत्पन्न होता है और काम से भय उत्पन्न होता है।

कामबन्धनमेवेदं नान्यदस्तीह बन्धनम्। - *महा.*
चाहना ही वास्तविक बन्धन है। यहाँ दूसरा और कोई बन्धन नहीं है।

कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्। - *ऋग्वेद.*
प्रारम्भ में काम उद्भूत हुआ, जो मन का प्रथम बीज था।

कामातुराणां न भयं न लज्जा। - *भर्तृ.*
कामातुर को न भय लगता है और न लज्जा।

कामात्क्रोधोऽभिजायते। - *गीता*
काम से क्रोध उत्पन्न होता है।

कामी स्वतां पश्यति। - *अभिज्ञा.*
कामी व्यक्ति सर्वत्र अपने इष्ट के अनुकूल देखता है।

क्रुद्धः पापं नरः कुर्यात् क्रुद्धो हन्यात् गुरूनपि। - *महा.*
क्रोधी मनुष्य पाप करता है। क्रोधी मनुष्य गुरुजनों को भी मार सकता है।

क्रोधः शत्रुः शरीरस्थो मनुष्याणां द्विजोत्तम। - *महा.*
हे द्विजोत्तम ! क्रोध मनुष्य के शरीर में विद्यमान उसका सबसे बड़ा शत्रु है।

क्रोधो मूलमनर्थानाम्। - *हितो.*
क्रोध अनर्थ का मूल है।

क्रोधो हि धर्मं हरति यतीनां दुःखसञ्चितम्। - *महा.*
मुनियों द्वारा कठिनाई से सञ्चित किए गए धर्म को क्रोध नष्ट कर देता है।

क्लिश्यन्ते लोभमोहिताः।
लोभ में पड़े व्यक्ति क्लेश पाते हैं।

क्षणे तुष्टाः क्षणे रुष्टास्तुष्टा रुष्टाः क्षणे क्षणे ।
अव्यवस्थितचित्तानां प्रसादोऽपि भयङ्करः ॥ - *समयो.*
अभी प्रसन्न, अभी क्रोधित, एक क्षण प्रसन्न, दूसरे क्षण अप्रसन्न। इस प्रकार के अस्थिर चित्त वाले लोगों की प्रसन्नता भी भय पैदा करती है।
घड़ी में तोला, घड़ी में माशा।

क्षीणा नरा निष्करुणा भवन्ति। - *हितो./पञ्च.*
क्षीण मनुष्य निर्दयी हो जाते हैं।
मरता क्या न करता।

चिन्ता जरा मनुष्याणामनध्वा वाजिनां जरा। - *पञ्च.*
चिन्ता मनुष्यों के लिए बुढ़ापा है और बंधे रहना अश्वों के लिए बुढ़ापा है।

चिन्तातुराणां न सुखं न निद्रा।
चिन्ता से व्याकुल व्यक्ति के पास न सुख होता है और न नींद।

चिन्तासमं नास्ति शरीरशोषणम्। - *सु.र.भा.*
चिन्ता के समान शरीर को सुखाने वाला कुछ नहीं है।
चिन्ता साँपिन को नहिं खाया।

तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः। - *भर्तृ.*
हमारा बुढ़ापा आ गया, पर तृष्णा बूढ़ी नहीं हुई।

तृष्णा हि सर्वपापिष्ठा नित्योद्वेगकरी स्मृता। - *महा.*
तृष्णा निश्चय ही सर्वाधिक पापी है, वह सदा उद्वेग को उत्पन्न करने

वाली मानी गई है।

तृष्णां चेह परित्यज्य को दरिद्रः क ईश्वरः। - *हितो.*
संसार में तृष्णा को त्याग देने पर कौन दरिद्र और कौन धनवान् रह जाता है ?

तृष्णां त्यजतः सुखम्। - *महा.*
तृष्णा त्यागने वाले मनुष्य को सुख मिलता है।

तृष्णे त्वमपि तृष्णार्ता त्रिषु स्थानेषु रज्यसि।
व्याधितेष्वनपत्येषु जरापरिणतेषु च ।। - *सु.र.भा.*
हे तृष्णे ! तुम भी तृष्णा में अन्धी होकर तीन स्थानों में मन लगाती हो—रोगी में, सन्तानहीन में और वृद्ध व्यक्ति में, क्योंकि इनकी इच्छाएं बढ़ जाती हैं।

तृष्णे देवि नमस्तुभ्यं धैर्यविप्लवकारिणि। - *सु.र.भा.*
हे तृष्णा देवि ! धैर्य नष्ट करने वाली तुमको नमस्कार है।

तृष्णैका तरुणायते। - *भर्तृ./पञ्च.*
आशा अथवा तृष्णा अभी भी तरुण के समान बलिष्ठ है, यद्यपि शरीर का अंग-अंग शिथिल हो गया है।

दीर्घसूत्री विनश्यति। - *पञ्च.*
धीरे काम करने वाले सुस्त व्यक्ति का नाश हो जाता है।

धिगाशा सर्वदोषभूः। - *सु.र.भा.*
सब दोषों को उत्पन्न करने वाली आशा को धिक्कार है।

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति। - *मनु.*
काम कभी उपभोग से शान्त नहीं होता।

न न्याय्यं परदोषमभिधातुम्। - *प्रतिमा.*
दूसरे के दोषों को कहना ठीक नहीं।

न भयञ्चास्ति जाग्रतः।
जागने वाले को कुछ भी भय नहीं होता है।

न महान्तं क्वापि गर्हयेत्।
बड़ों की निन्दा कभी नहीं करनी चाहिए।

न हि वैरेण वैराणि शाम्यन्तीह कदाचन। - *धम्मपदम्*
इस संसार में वैर से वैर कभी शान्त नहीं होता।

नानृतात्पातकं परम्। - *महा.*
झूठ से बढ़कर पाप नहीं।

नास्ति कामसमो व्याधिर्नास्ति मोहसमो रिपुः। - *चाण.*
काम के समान व्याधि नहीं और मोह के समान शत्रु नहीं।

नास्ति क्रोधसमो रिपुः। - *सु.र.भा.*
क्रोध से समान शत्रु नहीं।

नास्ति जागरतो भयम्। - *चाण.*
जागने वाले को भय नहीं।

नास्ति तृष्णासमो व्याधिः। - *समयो.*
तृष्णा के समान दूसरी व्याधि नहीं।
लालच बुरी बला है।

पापं कृत्वानुतप्येत।
पाप बन पड़े, तो पछताएं।

पैशुन्याद् भिद्यते स्नेहः। - *पञ्च.*
चुगली से स्नेह नष्ट हो जाता है।

मातरं पितरं पुत्रं भ्रातरं वा सुहृत्तमम्।
लोभाविष्टो नरो हन्ति स्वामिनं वा सहोदरम् ॥ - *भोज.*
लालच में पड़ा व्यक्ति माता, पिता, पुत्र, भाई, उत्तम मित्र, स्वामी अथवा सहोदर को मार सकता है।

मोहं विधत्ते विषयाभिलाषः।
विषयों की वासना मोह पैदा करती है।

मोहयन्ति च सम्पत्तौ कथमर्थाः सुखावहाः।
सम्पत्ति मिलने पर यदि मोह अधिक बढ़ गया तो धन सुखदायी कैसे हुआ ?
मोह सकल व्याधिन्ह कर मूला।

लोकापवादो बलवान्मतो मे। - *रघु.*
मेरे विचार में बदनामी बलवती है।

लोभः पापस्य कारणं लोभमूलानि पापानि। - *हितो.*
लालच सब पापों की जड़ है।
लालच बुरी बला है।

लोभाच्च नान्योऽस्ति रिपुः पृथिव्याम्। - *पञ्च.*
पृथिवी पर लोभ के अतिरिक्त कोई दूसरा शत्रु नहीं है।

लोभात्क्रोधः प्रभवति लोभात्कामः प्रजायते। - *हितो.*
लोभ से क्रोध होता है। लोभ से कामनाएं होती हैं।

विचित्ररूपाः खलु चित्तवृत्तयः। - *किरात.*
मनुष्य के चित्त की वृत्तियां विचित्र होती हैं।

वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति।
वेद के आदेश से विहित हिंसा हिंसा नहीं होती।

शोको नाशयते धैर्यं शोको नाशयते श्रुतम्।
शोको नाशयते सर्वं नास्ति शोकसमो रिपुः॥ - *रामा.*
शोक धैर्य को नष्ट कर देता है। शोक प्राप्त की गई विद्या को नष्ट कर देता है। शोक सब कुछ नष्ट कर देता है। शोक के समान दूसरा शत्रु नहीं है।

षड्दोषाः पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता।
निद्रा तन्द्रा भयं क्रोधमालस्यं दीर्घसूत्रता॥ - *हितो.*
जो मनुष्य सम्पत्ति की कामना करता हो, उसे ये छह दोष दूर करने

चाहिए—नींद, ऊंघ, डर, गुस्सा, आलस और सुस्ती।

सङ्गात्संजायते कामः। - *गीता*
आसक्ति से काम उत्पन्न होता है।

सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः। - *यजु.*
यजमान की कामनाएं सच्ची या सिद्ध हों।

हिंसैव दुर्गतेर्द्वारं हिंसैव दुरितार्णवः।
हिंसैव नरकं घोरं हिंसैव गहनं तमः॥ - *ज्ञानार्णवः*
हिंसा ही दुर्गति का द्वार है। हिंसा ही पाप का सागर है। हिंसा ही घोर नरक है और हिंसा ही गहन अन्धकार है।



काल एवं अदृष्ट-विषयक

काल

अकाले दुर्लभो मृत्युः स्त्रिया वा पुरुषस्य वा। - *रामा.*
किसी भी स्त्री या पुरुष की मृत्यु विना समय आए नहीं होती है।

अन्ततोऽश्मापि जीर्यति।
पत्थर भी अन्त में गल जाता है।

अपि धन्वन्तरिर्वैद्यः किं करोति गतायुषि। - *सु.र.भा.*
आयु पूरी हो जाने पर धन्वन्तरि वैद्य भी क्या कर सकता है ?
मृत्यु का क्या भरोसा ?

आयुर्याति क्षणे क्षणे।
आयु प्रतिक्षण बीत रही है।

आयुषः क्षण एकोऽपि सर्वरत्नैर्न लभ्यते ।
नीयते तद्वृथा येन प्रमादः सुमहानहो ॥ - *योग.*
आयु का एक क्षण भी संसार के सभी रत्नों से नहीं पाया जा सकता। उस आयु को जो व्यर्थ में खोता है, हाय ! कितना बड़ा प्रमाद करता है।

कः कं शक्तो रक्षितुं मृत्युकाले रज्जुच्छेदे के घटं धारयन्ति।
- *स्वप्न.*

मृत्यु का समय आ जाने पर कौन किसे बचा सकता है ? रस्सी के टूट जाने पर कौन घड़े को कुंए में गिरने से रोक सकता है ?

कः कालस्य न गोचरान्तरगतः। - *भर्तृ.*
काल किसे भक्षण नहीं करता है ?

कालः करोति कार्याणि काल एव निहन्ति च।
समय ही सब काम करता है और वही मारता भी है।

कालः कलयतामहम्। - *गीता*
मैं (श्रीकृष्ण) गिनती करने वालों में समय हूँ।

कालः क्रीडति गच्छत्यायुः। - *मोहमुद्गरम्, शङ्करः*
समय खेल रहा है, आयु बीत रही है।

कालः सुप्तेषु जागर्ति। - *चाण.*
काल सोए हुए लोगों में भी जागता रहता है।

कालस्य कुटिला गतिः। - *सु.र.भा.*
समय की गति कुटिल है।
काल करम गति अघटित जानी।

काले दत्तं वरं ह्यल्पमकाले बहुनापि किम्। - *कथा.*
समय पर थोड़ा देना भी अच्छा है, समय निकल जाने पर बहुत देने से भी क्या ?

कालो न यातो वयमेव याताः। - *भर्तृ.*
काल नहीं बीता है, हम ही बीत गए हैं।

कालो हि दुरतिक्रमः। - *रामा.*
काल का उल्लंघन करना बड़ा कठिन है।

कालो हि बलवत्तरः।
काल बड़ा बलवान् है।

कृतप्रयत्नोऽपि गृहे न जीवति।
मृत्यु समीप आने पर मनुष्य प्रयत्न करने पर घर में भी जीवित नहीं रहता है।

गतः कालो न चायाति।
गया वक्त फिर हाथ नहीं आता है।
अब पछताए होत क्या, जब चिड़ियाँ चुग गईं खेत।

गतं गतं नैव तु सन्निवर्तते।
जो गया, वह लौट कर नहीं आता है।

गतस्य शोचनं नास्ति। - *सु.र.भा.*
बीत गए का शोक अनुचित है।

गते शोको न कर्त्तव्यो भविष्यन्नैव चिन्तयेत्। - *चाण.*
गए का शोक नहीं करना चाहिए और न ही भविष्य की चिन्ता।
बीती ताहि बिसारि दे आगे की सुधि लेय।

न श्वः श्वः उपासीत् को हि मनुष्यस्य श्वो वेद। - *शत.ब्रा.*
कल पर कोई कार्य न छोड़ें, मनुष्य के कल को कौन जानता है?
काल करे सो आज कर।

नहि स्वमायुश्चिकिते जनेषु।
मनुष्यों में कोई अपनी आयु को नहीं जानता।

नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण। - *मेघ.*
रथचक्र की अरों के समान मनुष्य के जीवन की दशा ऊपर-नीचे हुआ करती है।
कभी के दिन बड़े कभी की रात।

भवन्त्युदयकाले हि सत्कल्याणपरम्पराः। - *कथा.*
उत्कर्ष के समय एक के बाद एक मंगल की बातें हुआ करती हैं।

विनाशकाले विपरीतबुद्धिः। - *चाण.*
विनाश के समय बुद्धि विपरीत हो जाती है।
जब बुरे दिन आते हैं तो बुद्धि मारी जाती है।

समय एव करोति बलाबलम्। - *शिशु.*
समय के प्रभाव से ही प्राणी बलवान् या निर्बल होते हैं।

समये हि सर्वमुपकारि कृतम्। - *शिशु.*
समय पर किया गया सब कार्य उपकारक होता है।

हा हन्त सम्प्रति गतानि दिनानि तानि।
हाय ! अब वे दिन बीत गये हैं।
वे दिन गए, जब खलील खां फ़ाख़्ता उड़ाया करते थे।

वसन्त ऋतु

ऋतूनां कुसुमाकरः। - *गीता*
मैं (श्रीकृष्ण) ऋतुओं में वसन्त ऋतु हूँ।

किं कोकिलस्य विरुतेन गते वसन्ते।
वसन्त के बीत जाने पर कोयल के कूकने से क्या लाभ ?

पिको वसन्तस्य गुणं न वायसाः।
वसन्त का गुण कोयल समझ सकती है, कौआ नहीं।

मासरत्नं वसन्तः। - *प्रसङ्गा.*
वसन्त मासों का रत्न है।

मासानां मार्गशीर्षोऽहम्। - *गीता*
मैं (श्रीकृष्ण) मासों में अगहन का मास हूँ।

वसन्ते भ्रमणं पथ्यम्।
वसन्त ऋतु में घूमना गुणकारी है।

सर्वं प्रिये चारुतरं वसन्ते। - *ऋतु.*
प्रिय वसन्त में सचमुच सब कुछ सुहावना लगने लगता है।

दैव/भाग्य

अत्यन्तविमुखे दैवे व्यर्थं यत्नं च पौरुषम्। - *कथा.*
भाग्य सर्वथा प्रतिकूल हो तो प्रयत्न और पुरुषार्थ दोनों व्यर्थ हो जाते हैं।

अरक्षितं तिष्ठति दैवरक्षितं सुरक्षितं दैवहतं विनश्यति। - *पञ्च.*
दैव से रक्षित, अरक्षित बचा रहता है। दैव से मारा गया, सुरक्षित भी नष्ट हो जाता है।

कल्पवृक्षोऽप्यभव्यानां प्रायो याति पलाशताम्। - *कथा.*
भाग्यहीनों के लिए कल्पवृक्ष भी ढाक का पेड़ बन जाता है।

कालक्रमेण जगतः परिवर्तमाना चक्रारपङ्क्तिरिव गच्छति भाग्यपङ्क्तिः। - *स्वप्न.*
मनुष्य का भाग्यचक्र, रथ में घूमते हुए पहिए के अरों के समूह की तरह समय के अनुसार ऊपर-नीचे, अनुकूल-प्रतिकूल घूमता ही रहता है।

क्व भोगमाप्नोति न भाग्यभाग्जनः। - *नैषध.*
भाग्यवान् व्यक्ति कहाँ पर उपभोग की सामग्री नहीं पाता है ?

ग्रावाणोऽप्यार्द्रतां सम्यग्भजन्त्यभिमुखे विधौ। - *कथा.*
भाग्य का साथ हो तो पत्थर भी कोमलता या गीलापन धारण कर लेते हैं।

दैवमविद्वांसः प्रमाणयन्ति। - *मुद्रा.*
मूर्ख लोग भाग्य को प्रमाण मानते हैं।

दैवमेव हि साहाय्यं कुरुते सत्त्वशालिनाम्। - *कथा.*
दैव पुरुषार्थी की ही सहायता करता है।

दैवं हि दैवमिति कापुरुषा वदन्ति। - *पञ्च.*
कायर ही 'भाग्य-भाग्य' ऐसा पुकारा करते हैं।
दैव दैव आलसी पुकारा।

दैवी विचित्रा गतिः। - *सु.र.भा.*
दैव की गति विचित्र है।
ईश्वर की माया, कहीं धूप कहीं छाया।

दैवे दुर्बलतां गते तृणमपि प्रायेण वज्रायते। - *कथा.*
भाग्य के दुर्बल हो जाने पर प्रायः तिनका भी वज्र के समान कष्ट देता है।

दैवेनैव हि साध्यन्ते सदर्थाः शुभकर्मणाम्। - *कथा.*
शुभकर्मियों के अच्छे उद्देश्य दैव से ही सिद्ध हो जाते हैं।

दैवेनोपहतस्य बुद्धिरथवा सर्वा विपर्यस्यति। - *मुद्रा.*
भाग्य से विहीन व्यक्ति की सम्पूर्ण विचार-शक्ति ही अस्तव्यस्त हो जाती है।

दैवे विमुखतां याते न कोऽप्यस्ति सहायवान्। - *सु.र.भा.*
दैव के प्रतिकूल होने पर कोई भी सहायक नहीं होता।

दैवो दुर्बलघातकः। - *सु.र.भा.*
दैव दुर्बल को मारता है।

न च दैवात्परं बलम्। - *सु.र.भा.*
दैव से बढ़कर कोई बल नहीं है।
निर्बल के बल राम।

नियतिः केन लङ्घ्यते। - *सु.र.भा.*
भाग्य को कौन लांघ सकता है ?
जो बदा सो अदा।

पूर्वजन्मकृतं कर्म तद्दैवमिति कथ्यते। - *हितो.*
पूर्वजन्म में किया गया कर्म ही इस जन्म में 'दैव' कहलाता है।

प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ विफलत्वमेति बहुसाधनता। - *शिशु.*
भाग्य के प्रतिकूल होने पर बहुत साधन भी निष्फल हो जाते हैं।

प्राप्तव्यमर्थं लभते मनुष्यो दैवोऽपि तं लङ्घयितुं न शक्तः। - *पञ्च.*
मनुष्य पाने योग्य वस्तु को पाता ही है, दैव भी उसे रोक नहीं सकता।

बलवति सति दैवे बन्धुभिः किं विधेयम्। - *सु.र.भा.*
दैव बलवान् हो तो बन्धुओं के लिए क्या कर्तव्य रह जाता है ?

भाग्यं फलति सर्वत्र न विद्या न च पौरुषम्। - *सु.र.भा.*
भाग्य से ही सर्वत्र फल मिलता है, विद्या और पौरुष से नहीं।

१. पढ़ें फारसी बेचें तेल, यह देखो कुदरत का खेल।
२. भाग्य करे काज।

भाग्यहीना न पश्यन्ति बहुरत्ना वसुन्धरा। - *चाण.*
धरती रत्नसम्पन्न है, किन्तु भाग्यहीन उसे नहीं देख पाते हैं।
सकल पदारथ हैं जग मांही। करमहीन नर पावत नाहीं॥

भाग्यैर्जयपराजयौ।
भाग्य से ही हार और जीत होती है।

यत्पूर्वं विधिना ललाटलिखितं तन्मार्जितुं कः क्षमः। - *भर्तृ.*
विधि द्वारा ललाट पर पहले से लिखे गए को मिटाने में कौन समर्थ है ?
विधि का लिखा को मेटन हारा।

लिखितमपि ललाटे प्रोज्झितुं कः समर्थः। - *हितो.*
ललाट पर लिखे को कौन मिटा सकता है ?
करमगति टारे नाहिं टरे।

विधिरहो ! बलवानिति मे मतिः। - *भर्तृ./पञ्च.*
मेरी समझ में विधि ही बलवान् है।

विधिलिखितं बुद्धिरनुसरति। - *सु.र.भा.*
बुद्धि ललाट पर लिखे का अनुसरण करती है।

विधेर्विचित्राणि विचेष्टितानि। - *सु.र.भा.*
विधाता के काम विचित्र होते हैं।

विधौ शिरस्थे कुटिले कुतः श्रीः।
भाग्य यदि कुटिल है तो फिर लक्ष्मी कहाँ ?

विषमां हि दशां प्राप्य दैवं गर्हति नरः। - *हितो.*
मनुष्य दुःखदायी अवस्था को पाकर दैव को ही दोष देता है।

शिरसि लिखितं लङ्घयति कः।
भाल पर लिखे को कौन लांघ सकता है ?

समुद्रमथनाल्लेभे हरिर्लक्ष्मीं हरो विषम्।
फल भाग्यानुसार ही मिलता है। समुद्र को मथने पर विष्णु ने लक्ष्मी को प्राप्त किया और शिव ने विष को।

भवितव्यता

अनतिक्रमणीयो हि विधिः। - *स्वप्न.*
विधि को कौन टाल सकता है ?
होनी बड़ी बलवान् है।

अवश्यभव्येष्वनवग्रहग्रहा। - *नैषध.*
होनहार को कोई नहीं टाल सकता है।

अवश्यम्भाविनो भावा भवन्ति महतामपि। - *हितो.*
जो अवश्य होने हैं, वे बड़ों को भी होते ही हैं।

अवश्यम्भाविन्यर्थे वै सन्तापो नैव विद्यते।
अवश्यम्भावी के हो जाने पर दुःख नहीं करना चाहिए।

न हि भवति यन्न भाव्यं भवति च भाव्यं विनापि यत्नेन।
करतलगतमपि नश्यति यस्य तु भवितव्यता नास्ति॥ - *पञ्च.*
जो होने वाला नहीं है, वह नहीं होता है। जो होने वाला है, वह विना किसी यत्न के भी पूरा हो जाता है। जो प्राप्त नहीं होने वाला है, वह हाथ में आकर भी नष्ट हो जाता है।

न हि सिद्धवाक्यान्युत्क्रम्य गच्छति विधिः सुपरीक्षितानि। - *स्वप्न.*
निश्चय ही विधाता भी अच्छी तरह परखे गए सिद्ध वाक्यों के प्रतिकूल नहीं चलता है।

नाऽभाव्यं भवतीह कर्मवशतो भाव्यस्य नाशः कुतः। - *भर्तृ.*
यहाँ कर्मवश जो नहीं होने वाला है, वह नहीं होता है; और जो होने वाला है, उसका निवारण भी कैसे हो सकता है ?

भवितव्यं भवत्येव कर्मणामीदृशी गतिः। - *महा.*
कर्मों की ऐसी गति है कि होनी अवश्य होती है।
होनहार फिरती नहीं।

भवितव्यता खलु बलवती। - *अभिज्ञा.*
होनी निश्चय ही बड़ी प्रबल है।

भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र। - *अभिज्ञा.*
होनी के द्वार सब जगह होते हैं।

भव्यं रक्षति भवितव्यता। - *मुद्रा.*
होनी भाग्यशाली की रक्षा करती है।

भव्यानां भवितव्यानां प्रथमं स्यात् शुभावहम्।
सुन्दर भवितव्यता के लक्षण शुभ होते हैं।
होनहार बिरवान के होत चीकने पात।

यदभावि न तद्भावि भावि चेन्न तदन्यथा। - *हितो.*
जो नहीं होना है वह नहीं होगा और जो होना है, वह होकर रहेगा।
अनहोनी होती नहीं होनी होबनहार।

सहायास्तादृशाश्चैव यादृशी भवितव्यता। - *चाण.*
जैसी होनी होती है, वैसे ही संगी-साथी मिल जाते हैं।
तुलसी जसि भवितव्यता तैसी मिले सहाय।

विपत्ति

आपत्काले मर्यादा नास्ति।
आपत्ति के समय कोई मर्यादा नहीं होती है।

आपत्काले विपरीतबुद्धिः।
आपत्ति आने के समय बुद्धि भी उलटी हो जाती है।

आपत्सु वैराणि समुद्भवन्ति। - *पञ्च.*
विपत्ति के समय शत्रु बढ़ जाते हैं।

आपदर्थे धनं रक्षेद् दारान् रक्षेद् धनैरपि। - *चाण./हितो./पञ्च.*
आपत्ति से बचने के लिए धन संचित करना चाहिए। धन से स्त्री की रक्षा करनी चाहिए।

आपदामापतन्तीनां हितोऽप्यायाति हेतुताम्। - *हितो.*
जब विपत्ति आने वाली होती है, तब हितैषी भी उसका कारण बन जाता है।

आपदि स्फुरति प्रज्ञा यस्य धीरः स एव हि। - *कथा.*
आपत्ति के समय जिसकी बुद्धि स्फुरित होती है, वही धैर्यवान् है।

गण्डस्योपरि पिण्डकः संवृत्तः। - *अभिज्ञा.*
एक दुःख के ऊपर दूसरा दुःख होना।
एक तो करेला दूसरा नीम चढ़ा।

गण्डस्योपरि स्फोटः। - *मुद्रा.*
घाव के ऊपर फुन्सी होना।
एक अनर्थ पर दूसरा अनर्थ।

चिन्तनीया हि विपदाम् आदावेव प्रतिक्रिया। - *सु.र.भा.*
आ सकने वाली विपत्ति का उपाय पहले से ही सोचकर रखना चाहिए।

छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति। - *पञ्च.*
विपत्ति के समय अनर्थों की बहुलता होती है।
१. गरीबी में आटा गीला।
२. ताड़ से गिरे खजूर पर अटके।

न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः। - *केनो.*
यदि इस संसार में या इस जन्म में नहीं जान पाए, तो महान् विनाश है।

नरः प्रत्युपकारार्थी विपत्तौ लभते फलम्। - *चारु.*
उपकार के बदले में उपकार चाहने वाले मनुष्य को विपत्ति के रूप में

फल मिलता है।

प्रत्यासन्नविपत्तिमूढमनसां प्रायो मतिः क्षीयते।
प्रायः विपत्ति समीप आने पर मूढ़मतियों की बुद्धि नष्ट हो जाती है।

प्रथमग्रासे मक्षिकापातः।
पहले ही कौर में मक्खी आ पड़ी।
सर मुड़ाते ही ओले पड़े।

प्रायः समापन्नविपत्तिकाले धियोऽपि पुंसां मलिना भवन्ति। - *हितो.*
प्रायः विपत्ति-काल के उपस्थित होने पर समझदार पुरुषों की बुद्धि भी मलिन हो जाती है।

बन्धनभ्रष्टः कपोतः चुल्लिकायां पतितः।
बन्धनभ्रष्ट होने पर कबूतर चूल्हे में जा पड़ा।
१. कुएं से निकले तो खन्दक में पड़े।
२. आकाश से गिरा, खजूर में अटका।

बहुविघ्नास्तु सदा कल्याणसिद्धयः। - *कथा.*
कल्याण की सिद्धि में सदैव बहुत विघ्न होते हैं।

भक्षितेऽपि लशुने न शान्तो व्याधिः।
लहसुन खाने पर भी व्याधि शान्त नहीं हुई।
जेहि के कारण मूंड़ मुंड़ावा, सो दुःख मोरे आगे आवा।

मर्कटस्य सुरापानं ततो वृश्चिकदंशनम्।
पहले बन्दर का शराब पीना और फिर बिच्छू का डसना।
एक तो करेला दूसरे नीम चढ़ा।

मित्राणां तत्त्वनिकषग्रावा विपत्।
मित्रों को परखने के लिए विपत्ति कसौटी है।
धीरज धरम मित्र अरु नारी। आपत्काल परखिये चारी॥

विघ्नवत्यः प्रार्थितार्थसिद्धयः। - *अभिज्ञा.*
अभीष्टवस्तुओं की उपलब्धियां बाधायुक्त होती हैं।

विपद् विपदमनुबध्नाति।
एक विपत्ति के पीछे दूसरी विपत्ति आती है।

विपदि न दूषितातिभूमिः। - *शिशु.*
विपत्ति के समय मर्यादा का उल्लंघन निन्दा के योग्य नहीं होता।

विपदि हन्त सुधापि विषायते। - *भर्तृ.*
विपत्ति के समय अमृत भी विष हो जाता है।

विश्वासाद्भयमुत्पन्नं मूलान्यपि निकृन्तति। - *पञ्च.*
विश्वास के कारण उत्पन्न होने वाला भय (अर्थात् विपत्ति) मनुष्य की जड़ों को भी काट देता है।

वृद्धानां वचनं पथ्यमापत्काले ह्युपस्थिते। - *हितो.*
आपत्ति आने पर वृद्धों के वचन हितकारी होते हैं।

श्रेयांसि बहुविघ्नानि।
कल्याणकारी कार्यों में बहुत विघ्न पड़ते हैं।

सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्। - *किरात.*
किसी काम को विना विचारे एकाएक नहीं करना चाहिए, क्योंकि सम्यक् विचार न करना बड़ी आपत्तियों का कारण है।
१. अज्ञानता विपत्ति का घर।
२. बिना विचारे जो करे, सो पाछे पछताय।



दर्शन-विषयक

अग्नीषोमात्मकं जगत्। - *शत.ब्रा.*
विश्व अग्नि और जल तत्त्वों के योग से बना है।

अनाथो देवरक्षकः।
जिसका कोई नहीं, उसकी रक्षा ईश्वर करता है।

अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते। - *ईशा.*
साधक कर्मों के अनुष्ठान 'अविद्या' से मृत्यु को पार करके ज्ञान के अनुष्ठान 'विद्या' से मोक्ष पाता है।

अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते। - *गीता*
अहंकार से मोहित हुए अन्तःकरण वाला पुरुष 'मैं कर्ता हूँ' ऐसा मान लेता है।

अहं ब्रह्मास्मि। - *बृह.उप.*
मैं (आत्मा) ब्रह्म हूँ।

आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषणेन च।
नेत्रवक्त्रविकारैश्च लक्ष्यतेऽन्तर्गतं मनः॥ - *मनु./पञ्च.*
आकार-प्रकार, संकेत, गति, चेष्टा, वचन, नेत्र और मुख की भाव-भङ्गिमा से मनुष्य के मन के भीतर की वृत्ति का पता लग ही जाता है।

आत्मानं सततं रक्षेद् दारैरपि धनैरपि। - *चाण./हितो./पञ्च.*
स्त्री और धन दोनों ही से सदा अपनी रक्षा करनी चाहिए।

आत्मोत्कर्षं साधयेद्यत्नतः पुमान्।
मनुष्य को अपना उत्कर्ष यत्नपूर्वक साधना चाहिए।

आयुः कर्म च वित्तं च विद्या निधनमेव च।
पञ्चैतानि हि सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः॥ - *पञ्च.*
आयु, कर्म, धन, विद्या और मरण—ये पांच प्राणी के गर्भ में रहते ही निश्चित कर दिए जाते हैं।

ईशस्य हि वशे लोको योषा दारुमयी यथा।
यह संसार काठ की पुतली की तरह ईश्वर के वश में है।

ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्। - *ईशा.*
जगत् में जो कुछ भी जड़चेतनस्वरूप है, वह सब ईश्वर से व्याप्त है।

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। - *गीता*
हे अर्जुन ! अन्तर्यामी परमेश्वर सब प्राणियों के हृदय में स्थित है।

ईश्वरेच्छा बलीयसी।
ईश्वर की इच्छा अधिक बलवान् है।
ईश्वर चाहा होत है।

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत। - *कठो.*
हे मनुष्यो ! उठो, जागो और श्रेष्ठ पुरुषों के संसर्ग से उस ब्रह्म को जानो।

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्। - *गीता*
मनुष्य को चाहिए कि अपने द्वारा अपना उद्धार करे और अपने को अधोगति में न पहुंचाए।

ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः।
ज्ञान के विना मोक्ष नहीं होता है।

एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः। - *ऋग्वेद.*
एक तत्त्व को ही विद्वान् लोग अग्नि, यम, मातरिश्वा आदि कई नामों से पुकारते हैं।

एकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति। - *ऋग्वेद.*
एक प्रभु का अनेक तरह से वर्णन किया जाता है।

एकाकी न रमते। - *बृह.उप.*
प्रजापति अकेले रमण नहीं करता।

एको दाधार भुवनानि विश्वा। - *ऋग्वेद.*
एक अद्वितीय परमात्मा सारे लोकों और लोकान्तरों को धारण करता है।

एको देवः केशवो वा शिवो वा। - *भर्तृ.*
देवता एक ही मानना चाहिए, चाहे विष्णु या शिव।

एको हि जायते जन्तुरेक एव विनश्यति। - *रामा.*
प्राणी अकेला ही पैदा होता है और अकेला ही मरता है।

एतस्माज्जन्मसाफल्यं यद्हरेः स्मरणं नृणाम्।
मनुष्यों के जन्म की सफलता इसी में है कि हरि का स्मरण किया जाए।

ओमिति ब्रह्म। - *तैत्ति.उप.*
'ओम्' ही ब्रह्म है।

कर्मणो ज्ञानमतिरिच्यते। - *सु.र.भा.*
कर्म से ज्ञान श्रेष्ठ है।

किमलभ्यं भगवति प्रसन्ने श्रीनिकेतने। - *सु.र.भा.*
लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु के प्रसन्न हो जाने पर क्या दुर्लभ है ?

किमीश्वराणां परोक्षम्। - *अभिज्ञा.*
ईश्वर या ऐश्वर्यशालियों से कौन सी बात छिपी रह सकती है ?

को जानाति जनो जनार्दनमनोवृत्तिः कदा कीदृशी। - *सु.र.भा.*
कौन मनुष्य जानता है कि भगवान् जनार्दन के मन की वृत्ति कब कैसी है?
भगवान् की मर्ज़ी कौन जानता है ?

क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति। - *गीता*
पुण्य क्षीण हो जाने पर जीव (स्वर्ग से) मर्त्यलोक में लौट आते हैं।

गुणधर्मविहीनस्य जीवितं निष्प्रयोजनम्। - *चाण.*
गुण और धर्म से रहित मनुष्य का जीवन निरर्थक है।

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्। - *गीता*
हे कृष्ण ! यह मन बड़ा चंचल और अस्थिर स्वभाव वाला है।

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च। - *गीता*
जन्म लेने वाले की मृत्यु निश्चित है और मरने वाले का जन्म।
आवेगा सो जावेगा, राजा रंक फकीर।

ज्ञानेन मुक्तिर्न तु मण्डनेन। - *चाण.*
ज्ञान से मुक्ति होती है, आभूषण से नहीं।

तत् त्वमसि। - *छा.उप.*
वही (ब्रह्म) तुम (आत्मा) हो।

तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु। - *यजु.*
वह मेरा मन कल्याणकारी निश्चय वाला हो।

तपःसीमा मुक्तिः। - *प्रसङ्गा.*
तपस्या की सीमा मोक्ष है।

तस्य तदेव हि मधुरं यस्य मनो यत्र संलग्नम्।
वही उसके लिए मधुर है, जहाँ जिसका मन लगा हुआ है।
जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरत देखी तिन तैसी।

दूरस्थोऽपि न दूरस्थो यो यस्य मनसि स्थितः। - *चाण.*
जो व्यक्ति हृदय में रहता है, वह दूर होने पर भी दूर नहीं है।

धर्मार्थकाममोक्षाणां यस्यैकोऽपि न विद्यते।
अजागलस्तनस्येव तस्य जन्म निरर्थकम् ॥ - *हितो./चाण.*
जिसने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थों में से एक को भी प्राप्त नहीं किया, उसका जीवन बकरी के गले में लटकती खाल (उत्पन्न स्तन) के समान व्यर्थ है।

न जाने संसारः किममृतमयः किं विषमयः। - *भर्तृ.*
नहीं जानते कि संसार अमृतमय है या विषमय।

न जायते म्रियते वा कदाचित्। - *गीता*
यह आत्मा न कभी जन्म लेता है और न कभी मरता है।

न ज्ञानेन विना मोक्षम्।
ज्ञान के विना मोक्ष नहीं मिलता है।

न मुक्तेः परमा गतिः। - *योग.*
मुक्ति से बढ़कर परम गति नहीं है।

नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय। - *यजु.*
ज्ञान के अतिरिक्त मुक्ति का अन्य कोई मार्ग नहीं है।

नास्ति ज्ञानात्परं सुखम्।
आत्मज्ञान से बड़ा कोई सुख नहीं है।

नास्तिको वेदनिन्दकः। - *मनु.*
वेदों की निन्दा करने वाला नास्तिक है।

निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्। - *गीता*
हे सव्यसाचिन् अर्जुन ! तुम केवल निमित्तमात्र हो जाओ।
तेरा नाम, मेरा काम।

निरीहाणां तृणं जगत्। - *चाण.*
निरपेक्ष के लिए जगत् तिनके के समान है।

निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम्।
राग-द्वेष से शून्य मनुष्य के लिए घर तपोवन है।
मन चंगा तो कठौती में गंगा।

निश्चयात्मिका बुद्धिः।
बुद्धि वही है, जो निश्चय कराती है।

परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते। – *हितो./पञ्च./भर्तृ.*
इस परिवर्तनशील संसार में कौन मरता और कौन पैदा नहीं होता है ?

परोक्षप्रिया इव हि देवाः। – *ऐतरेयोपनिषद्*
देवता तो मानो अप्रत्यक्ष से प्रेम करते हैं।

पुण्यश्लोको नलो राजा पुण्यश्लोको युधिष्ठिरः।
पुण्यश्लोका च वैदेही पुण्यश्लोको जनार्दनः ॥
राजा नल, युधिष्ठिर, सीता और जनार्दन – पुण्यश्लोक यानी पुण्य कीर्ति वाले हैं।

पुरुष एवेदं सर्वम्। – *ऋग्वेद.*
यह सब चराचर जगत् पुरुष ही है।

पूज्यतमः खलु ब्राह्मणः। – *मध्यम.*
ब्रह्म को जानने वाला पुरुष निश्चय ही परम पूजनीय है।

प्रत्यक्षे किं प्रमाणम्।
प्रत्यक्ष को क्या प्रमाण चाहिए ?
हाथ कंगन को आरसी क्या ?

प्रसीदत्यपरिस्पन्दि पयः कलुषितं यथा ।
तथा शान्तमपि स्वान्तं प्रसीदति शनैः शनैः॥
जैसे मलिन जल स्थिर होने पर धीरे-धीरे स्वच्छ हो जाता है, वैसे ही शान्त हुआ चित्त धीरे-धीरे प्रसन्न हो जाता है।

बहुत्रा जीवितो मनः। – *ऋग्वेद.*
जीवित व्यक्ति का मन अनेक स्थानों पर जाने वाला होता है।

ब्रह्म कर्तुम् अकर्तुम् अन्यथाकर्तुं समर्थः।
ब्रह्म करने, न करने और कुछ भी करने में समर्थ है।

ब्रह्म जानाति स ब्राह्मणः।
जो ब्रह्म को जानता है, वही ब्राह्मण है।

ब्रह्मविदाप्नोति परम्। - *तैत्ति.उप.*
ब्रह्मज्ञानी परम ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।

ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति। - *मु.उप.*
जो ब्रह्म को जान लेता है, वह ब्रह्म ही हो जाता है।

ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः।
ब्रह्म सत्य है। जगत् मिथ्या है। जीव ब्रह्म ही है, उससे कदापि भिन्न नहीं है। – *शाङ्कर वेदान्तदर्शन का सिद्धान्त।*

ब्रह्म सूर्यसमं ज्योतिः। - *यजु.*
ब्रह्म का प्रकाश सूर्य के समान है।

भक्त्या तुष्यन्ति दैवतानि। - *चारु.*
देवता भक्ति से प्रसन्न होते हैं।

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्तास्तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः। - *भर्तृ.*
भोग नहीं भोगे गए, किन्तु हम स्वयं भोगे गए। तप नहीं तपा गया, अपितु हम ही तप्त हो गए।

भोगान् क्षणभङ्गुरान् विद्यात्।
भोगों को क्षण में नष्ट होने वाला समझो।
आज है सो कल नहीं।

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः। - *चाण.*
मनुष्यों का मन ही समस्त बन्धनों का कारण है और वही इनसे मोक्ष का कारण भी है।

मनःपूतं समाचरेत्। - *मनु.*
मन से सोच-विचार कर कार्य करना चाहिए।

मनो धावति सर्वत्र मदोन्मत्तगजेन्द्रवत्।
मतवाले हाथी की तरह मनुष्य का मन सब तरफ दौड़ता फिरता है।

मनो हि जन्मान्तरसङ्गतिज्ञम्। - *रघु.*
मनुष्य का मन पिछले जन्म के सम्बन्ध को जान सकता है।

मरणान्तानि वैराणि। - *रामा.*
मरने पर शत्रुता का अन्त हो जाता है।

महद् देवानामसुरत्वमेकम्। - *ऋग्वेद.*
देवताओं का महान् सामर्थ्य एक ही है।

मृत्युर्जन्मवतां वीर देहेन सह जायते ।
अद्य वाब्दशताब्दे वा मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवम्॥ - *भाग.*
हे वीर ! जन्म लेने वाले की मृत्यु देह के साथ उत्पन्न हो जाती है। आज हो या सौ वर्ष में हो—प्राणियों की मृत्यु निश्चित है।

मृत्योः सर्वत्र तुल्यता। - *सु.र.भा.*
सबकी मृत्यु एक सी है।

यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे।
जैसा शरीर में है, वैसा ही ब्रह्माण्ड में है।

यदीच्छसि वशीकर्तुं जगदेकेन कर्मणा।
पुरा पञ्चदशास्येभ्यो गां चरन्तीं निवारय॥ - *चाण.*
यदि तुम एक ही कार्य से संसार को वश में करना चाहते हो, तो सबसे पहले पन्द्रह इन्द्रियरूप मार्गों से विचरण करने वाले मन को रोको।

यदेव रोचते यस्मै भवेत्तत्तस्य सुन्दरम्। - *हितो.*
जो जिसे भा जाए, वही उसके लिए सुन्दर है।
सूरदास जासो जाको हित, सो ही ताहि सुहात।

यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद् धाम परमं मम। - *गीता*
जिस परम पद को प्राप्त करके मनुष्य फिर से संसार में नहीं आता है, मेरा (श्रीकृष्ण का) परम धाम वही है।

यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी।* – *पञ्च.*
जिसकी जैसी भावना होती है, उसको वैसी सिद्धि मिलती है।
जाकी रही भावना जैसी। प्रभु मूरत देखी तिन तैसी॥

यावज्जीवेत्सुखं जीवेदृणं कृत्वा घृतं पिबेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ॥ – *सर्वदर्शनसंग्रहः*
जब तक जिओ सुख से जिओ। ऋण लेकर घी पिओ। क्योंकि शरीर के जल जाने पर फिर आना कहाँ है ? – *चार्वाक दर्शन का सिद्धान्त।*

योगक्षेमं वहाम्यहम्। – *गीता*
नित्य एकीभाव से मुझमें स्थित रहने वाले पुरुषों के 'योग' (अप्राप्त की प्राप्ति) और 'क्षेम' (प्राप्त की रक्षा) को मैं (श्रीकृष्ण) स्वयं वहन करता हूँ।

रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति। – *तैत्ति.उप.*
भगवान् रसस्वरूप हैं। उसी रस को पाकर निश्चय ही प्राणिमात्र आनन्द का अनुभव करता है।

वयं देवानां सुमतौ स्याम। – *यजु.*
हम देवों की सुमति में रहें।

वादे वादे जायते तत्त्वबोधः।
शास्त्रार्थ से तत्त्व की समझ उत्पन्न होती है।

विज्ञानमानन्दं ब्रह्म। – *बृह.उप.*
ब्रह्म ज्ञान और आनन्दस्वरूप है।

श्रीकृष्णस्य कृपालवो यदि भवेत् कः कं निहन्तुं क्षमः।
यदि श्रीकृष्ण की कृपा का अंश भी मिल जाए तो कौन किसको मारने में समर्थ हो सकता है ?
जाको राखे साँइया मार सके ना कोय।

---

* **मन्त्रे तीर्थे द्विजे देवे दैवज्ञे भेषजे गुरौ।**
अर्थात् मन्त्र, तीर्थ, ब्राह्मण, देवता, ज्योतिषी, ओषधि और गुरु में ...। यह श्लोक का पूर्वार्ध है, परंतु उत्तरार्ध ही लोकोक्ति के रूप में प्रचलित है।

संसारं क्षणभङ्गुरम्। - *हितो.*
संसार नाशवान् है। वह प्रतिक्षण नष्ट होता रहता है।

स ओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु। - *यजु.*
वह व्यापक परमतत्त्व सभी प्राणियों में ओत-प्रोत है।

सङ्कल्पविकल्पात्मकं मनः।
मन संकल्प और विकल्प स्वरूप है।

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। - *तैत्ति.उप.*
ब्रह्म सत्य, ज्ञानस्वरूप और अनन्त है।

सर्वं खल्विदं ब्रह्म। - *छा.उप.*
यह सब कुछ ब्रह्म ही है।

सर्वदेवनमस्कारः ईश्वरं प्रति गच्छति।
सब देवों के लिए किया गया नमस्कार ईश्वर के प्रति होता है।

सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते। - *गीता*
सभी कर्मों को त्यागने वाला पुरुष 'गुणातीत' कहा जाता है।

स वा अयमात्मा ब्रह्म। - *बृह.उप.*
आत्मा ही ब्रह्म है।

साक्षात्कृतधर्माणो महर्षयः। - *उत्तर.*
ऋषियों ने धर्म का साक्षात्कार किया है।

सानुकूले जगन्नाथे विप्रियः सुप्रियो भवेत्।
ईश्वर की निगाह सीधी हो तो शत्रु भी मित्र बन जाता है।

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च। - *ऋग्वेद.*
सूर्य (तेजस्वी परमात्मा) चेतन और जड़ जगत् का स्वामी है।

सोऽकामयत। बहु स्यां प्रजायेयेति। - *तैत्ति.उप.*
उस परमात्मा ने कामना की – 'मैं बहुत हो जाऊँ।'



साहित्य-विषयक

अर्धमात्रालाघवेनापि पुत्रोत्सवं मन्यन्ते वैयाकरणाः। - *सु.र.भा.*
आधी मात्रा की कमी हो जाने पर भी वैयाकरण पुत्रोत्सव मानते हैं।

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्। - *महा.*
इतिहास और पुराणों द्वारा वेद के मन्त्रों के अर्थ की पुष्टि तथा विस्तार करना चाहिए।

उदिते नैषधे काव्ये क्व माघः क्व च भारविः।
नैषधकाव्य की रचना के बाद कहाँ माघ और कहाँ भारवि ?

उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम् ।
दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः॥ - *सु.र.भा.*
महाकवि कालिदास की उपमा, भारवि का अर्थगौरव और दण्डी का पदलालित्य प्रसिद्ध हैं। महाकवि माघ में तीनों गुण हैं।

ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः।
ऋषि वे हैं, जिन्होंने (समाधि की अलौकिक अवस्था में) मन्त्रों का दर्शन किया है।

एको रसः करुण एव निमित्तभेदात्। - *उत्तर.*
एक ही करुण रस निमित्तों के भेद से भिन्न-भिन्न होता है।

करोति रागं हृदि कौतुकाधिकम्। - *काद.*
कहानी हृदय में कौतूहल से भरा आकर्षण पैदा करती है।

कलारत्नं गानम्।
सभी कलाओं में गान-विद्या श्रेष्ठ रत्न है।

कलासीमा काव्यम्। - *प्रसङ्गा.*
काव्यरचना कला की सीमा है।

कलौ वेदान्तिनो भान्ति फाल्गुने बालका इव। - *सु.र.भा.*
कलियुग में इस तरह वेदान्ती दिखाई पड़ते हैं, जैसे फागुन में बालक।

कवयः किन्न पश्यन्ति। - *चाण.*
कवि क्या नहीं देखते हैं ?
जहां न पहुँचे रवि वहाँ पहुँचे कवि।

कवयः क्रान्तदर्शिनः।
कवि सर्वत्र पहुँची हुई दृष्टि वाले होते हैं।

कविः करोति काव्यानि।
कवि काव्यसर्जन करता है।

कवितायाः परिपाकाननुभवरसिको विजानाति।
कविता के रस की पूर्णता को अनुभवशील रसिक जन ही जानता है।

कवीनामुशना कविः। - *गीता*
मैं (श्रीकृष्ण) कवियों में शुक्राचार्य कवि हूँ।

कस्य न जनयति हर्षं सत्काव्यं मधुरवचनं च। - *गाथा.*
अच्छा काव्य और मधुर वचन किसे प्रसन्न नहीं करते हैं ?

का विद्या कवितां विना।
विना कविता के विद्या किस काम की ?

काव्यं सुधा रसज्ञानां कामिनां कामिनी सुधा।
रसिकों के लिए काव्य अमृत है और कामी पुरुषों के लिए कामिनी अमृत है।

काव्यसम्बन्धिनी कीर्तिः स्थायिनी निरपायिनी।
काव्य-सम्बन्धी कीर्ति स्थायी और नष्ट न होने वाली होती है।

काव्यस्यात्मा ध्वनिः। - *ध्वन्यालोकः*
काव्य की आत्मा ध्वनि-तत्त्व है।

काव्येषु नाटकं रम्यम्।
सभी प्रकार के काव्यों में नाटक सबसे रमणीय होता है।

गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति।
गद्य में लिखना ही कवियों की वास्तविक कसौटी है।

गीता गङ्गोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते।
गीतारूपी गंगाजल पी लेने पर फिर जन्म नहीं होता है।

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः। - *महा.*
सुन्दर तरह से गाई गई गीता ही पढ़नी चाहिए, अन्य शास्त्रों के विस्तार में जाने का क्या प्रयोजन है ?

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः ।
नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम् ॥ - *भर्तृ.*
अत्यन्त पुण्यवान् और सब रसों में सिद्ध वे महाकवि लोग अमर हैं, जिनके यशरूपी शरीर को बुढ़ापे तथा मृत्यु से उत्पन्न होने वाला भय नहीं है।

देवस्य पश्य काव्यम्। - *ऋग्वेद.*
उस कालात्मक देव के (वेदरूप) काव्य को देखो।

देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति।.- *अथर्व.*
उस देव का यह काव्य देखो, जो न मरता और न जीर्ण ही होता है।

धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः। - *महा.*
धर्म को जानने की इच्छा करने वाले लोगों के लिए वेद परम प्रमाण है।

नरत्वं दुर्लभं लोके विद्या तत्र सुदुर्लभा।
कवित्वं दुर्लभं तत्र शक्तिस्तत्र सुदुर्लभा॥ - *अग्निपुराणम्*
कई जन्मों में कोई प्राणी मानवशरीर धारण कर पाता है। मानव होने पर भी कई जन्म विद्याभ्यास में बीत जाते हैं। कई जन्मों में कोई विद्वान् कविता कर पाता है और कवित्वशक्ति को प्राप्त करने में यदि और भी जन्म बीत जाएं तो इसमें सन्देह क्या ?

नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम्। - *मालवि.*
भिन्न-भिन्न रुचि रखने वाले लोगों के लिए नाटक ही बहुधा समान रूप से मनोरंजन करने वाला होता है।

निरंकुशाः कवयः।
कवियों पर कोई अंकुश नहीं होता है।

पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।
- *मालवि.*

सब कुछ पुराना होने से ही अच्छा नहीं होता है और न नया होने से कोई काव्य त्याज्य होता है।

बाणोच्छिष्टं जगत् सर्वम्।
शेष समस्त काव्य बाण की जूठन है।

भारतं पञ्चमो वेदः।
महाभारत पांचवाँ वेद है।

भारतामृतसर्वस्वं गीता।
श्रीमद्भगवद्गीता महाभारत का अमृतरूप सर्वस्व है।

भारते भातु भारती।
भारत देश में भारती (संस्कृत) सुशोभित हो।

भाषासु मुख्या मधुरा दिव्या गीर्वाणभारती ।
तस्माद् हि काव्यं मधुरं तस्मादपि सुभाषितम्॥ - *सु.र.भा.*
दिव्यभाषा संस्कृत सभी भाषाओं में मुख्य और मधुर है। संस्कृत-साहित्य में काव्य मधुर है और काव्यों में भी सुभाषित सबसे बढ़कर मधुर है।

यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्। - *महा.*
जो कुछ इस 'महाभारत' में है, वही अन्यत्र है। जो इसमें नहीं है, वह कहीं नहीं है।

यस्य वाक्यं स ऋषिः। - *ऋक्सर्वानुक्रमणी*
मन्त्ररूप वाक्यों के वक्ता ऋषि हैं।

यस्य सम्पुटिका नास्ति कुतस्तस्य सुभाषितम्। - *पञ्च.*
जिसके पास सुभाषितों का संग्रह नहीं है अर्थात् जिसे वे याद नहीं हैं– वह अवसर पर सुभाषितों का प्रयोग कैसे कर सकता है ?

रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्। - *रसगङ्गाधरः*
रमणीय अर्थ का प्रतिपादक शब्द काव्य है।

रीतिरात्मा काव्यस्य। - *काव्यालंकारसूत्राणि*
काव्य की आत्मा रीति है।

रोचनार्था फलश्रुतिः। - *भाग.*
फलश्रुति उपासक की रुचि बढ़ाने के लिए होती है।

वक्तारः सुलभा लोके श्रोतारस्तु सुदुर्लभाः।
इस संसार में वक्ता सरलता से मिल जाते हैं, किन्तु श्रोता अत्यन्त कठिनता से मिलते हैं।

वाक्यं रसात्मकं काव्यम्। - *साहित्यदर्पणः*
रसात्मक वाक्य को काव्य कहते हैं।

विद्यारत्नं सरसकविता।
सरस कविता विद्या में रत्न जैसी है।

विना वेदं विना गीतां विना रामायणीं कथाम् ।
विना कविं कालिदासं भारतं भारतं नहि।।
विना वेद के, विना गीता के, विना रामायण की कथा के और विना कवि कालिदास के भारत देश 'भारत' नहीं है।

वेदानां सामवेदोऽस्मि। - *गीता*
मैं (श्रीकृष्ण) चारों वेदों में सामवेद हूँ।

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्। - *मनु.*
वेद समस्त धर्म का मूल है।

वेदो हि विज्ञानम्।
वेद ही विज्ञान है।

शोकः श्लोकत्वमागतः।
महर्षि वाल्मीकि के हृदय का शोक (व्याध के द्वारा मारे गए क्रौञ्च को देखकर) श्लोक के रूप में छलक पड़ा।

श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोकः। - *रघु.*
जिन महर्षि वाल्मीकि का शोक ही श्लोक बनकर निकल पड़ा।
वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान।

श्रवणसुखसीमा हरिकथा। - *प्रसङ्गा.*
भगवान् की कथा सुनना सुनने के सुख की सीमा है।

श्रीमद्रामायणी गङ्गा पुनाति भुवनत्रयम्।
श्रीमद्रामायण रूपी गंगा तीनों लोकों को पवित्र करती है।

श्रुतिर्विभिन्ना स्मृतयश्च भिन्नाः। - *सु.र.भा.*
श्रुतियां अलग-अलग हैं और स्मृतियां भी अलग-अलग बातें कहती हैं।

संस्कृतिः संस्कृताश्रिता।
भारतीय संस्कृति संस्कृत के आश्रय में रहती है।

सद्यः फलति गान्धर्वम्। - *सु.र.भा.*
संगीत का फल अविलम्ब मिलता है।

सर्वज्ञानमयो हि सः। - *मनु.*
यह वैदिक वाङ्मय सम्पूर्ण ज्ञान से युक्त है।

सर्वं वेदात् प्रसिध्यति। - *मनु.*
सब कुछ वेद से ही सिद्ध होता है।

सर्वतः संस्कृतीभूय सुखिनः सन्तु सर्वदा। – *पण्डिता क्षमाराव*
सब प्रकार से संस्कृत से सुसम्पन्न होकर सदा सुखी हों।

साहित्यसंगीतकलाविहीनः साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः। – *भर्तृ.*
साहित्य, संगीत और कला से विहीन मनुष्य पूंछ और सींग के विना साक्षात् पशु है।

स्तुता मया वरदा वेदमाता। – *अथर्व.*
हम इष्ट प्रदान करने वाली 'वेदमाता' की स्तुति करते हैं।

स्थाणुरयं भारहारः किलाभूद्
अधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम् ॥ – *निरुक्तम्*
जो व्यक्ति वेद को पढ़कर उसके अर्थ को नहीं जानता, वह ठूँठ की तरह है, वह केवल बोझा ढोने वाला होता है।



लोकनीति-विषयक

लोकनीति

अज्ञातकुलशीलस्य वासो देयो न कस्यचित्। - *हितो.*
जिसका कुल और शील ज्ञात न हो, उसे अपने घर में निवास देना उचित नहीं है।
अनजाने का वास खतरनाक।

अधरे पयसा दग्धे तक्रं पिबति फूत्कृत्य।
दूध का जला मट्ठा भी फूंक-फूंक कर पीता है।

अधिकस्याधिकं फलम्। - *सु.र.भा.*
अधिक करने का अधिक फल होता है।
जितना गुड़ डालोगे, उतना मीठा होगा।

अध्रुवाद् ध्रुवं वरम्।
अनिश्चित से निश्चित अच्छा होता है।
नौ नगद न तेरह उधार।

अनतिक्रमणीयानि श्रेयांसि। - *अभिज्ञा.*
कल्याणकारक वस्तुएं लंघन के योग्य नहीं हुआ करतीं।

अनार्यजुष्टेन पथा प्रवृत्तानां शिवं कुतः। - *कथा.*
नीच मनुष्यों द्वारा चले हुए मार्ग पर जो चलते हैं, उनका कल्याण नहीं होता है।

अनार्यः परदारव्यवहारः। - *अभिज्ञा.*
दूसरे की स्त्री के विषय में पूछताछ अनुचित है।

अन्यायं कुरुते यदि क्षितिपतिः कस्तं निरोद्धुं क्षमः। - *सु.र.भा.*
यदि राजा ही अन्याय करे, तो उसे कौन रोक सकता है ?
समरथ को नहीं दोष गोसांई।

अपि शास्त्रेषु कुशला लोकाचारविवर्जिताः।
सर्वे ते हास्यतां यान्ति……॥ - *पञ्च.*
शास्त्रों में कुशल होने पर भी लोकव्यवहार से अनभिज्ञ सभी व्यक्ति उपहास के पात्र होते हैं।

अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूज्यानां तु विमानना ।
त्रीणि तत्र प्रवर्तन्ते दुर्भिक्षं मरणं भयम् ॥ - *पञ्च.*
जहाँ न पूजने योग्य लोगों को पूजा जाता है और पूजने योग्य लोगों का तिरस्कार किया जाता है, वहाँ अकाल, मृत्यु और भय—ये तीनों होते हैं।

अपेयेषु तडागेषु बहुतरमुदकं भवति।
न पीने योग्य पानी वाले तालाबों में अधिक जल होता है।
जोड़ जोड़ मर जाएंगे, माल जमाई खाएंगे।

अभावादल्पता वरम्।
न होने से थोड़ा होना अच्छा है।

अमोघो देवतानां च प्रसादः किन्न साधयेत्। - *कथा.*
देवताओं की कभी व्यर्थ न होने वाली प्रसन्नता से क्या-क्या सिद्ध नहीं किया जा सकता है ?

अरण्यरुदितोपमम्। - *पञ्च.*
जंगल में रोने जैसा व्यर्थ है।
जंगल में रोना, अपने दीदा खोना।

अर्के चेन्मधु विन्देत किमर्थं पर्वतं व्रजेत्। - *सांख्यकारिका*
यदि (मार्ग के) मन्दार वृक्ष में ही मधु मिल जाए तो पर्वत पर किसलिए जाया जाए।
घर में आया साँप, बाम्बी-पूजन क्यों जाएं।

अर्थी दोषं न पश्यति। - *चाण.*
जिसे अपना कार्य सिद्ध करना है, उसे कुछ भी करने में दोष नहीं दिखता।

अलभ्यं हीनमुच्यते।
जो न मिले, उसे हीन बताते हैं।
अंगूर खट्टे हैं।

अवसरोपसर्पणीया राजानः। - *अभिज्ञा.*
राजा लोग यथावसर मिलने के योग्य होते हैं।

अवृत्तिकं त्यजेद् देशम्।
जिस देश में आजीविका न हो, उसे छोड़ देना चाहिए।

अशक्तास्तत्पदं गन्तुं ततो निन्द्यं प्रवर्तते।
जब उस स्थान या पद तक जाने में असमर्थ हैं तो उसकी बुराई करने लगते हैं।
अंगूर खट्टे हैं।

अश्वा यस्य जयस्तस्य। - *चाण.*
जिसके पास बहुत से घोड़े हैं, उसी की जय है।
जिसकी लाठी उसकी भैंस।

अस्ति यद्यपि सर्वत्र नीरं नीरजमण्डितम् ।
रमते न मरालस्य मानसं मानसं विना ॥ - *सुभा.*
यद्यपि सब तरफ कमलों से सुशोभित जल वाले सरोवर हैं, तथापि हंस का मन मानससरोवर के विना और कहीं नहीं लगता है।

आतुरे नियमो नास्ति।
लालायित व्यक्ति के लिए कोई नियम नहीं होता।
गरज बावली होती है।

आत्मछिद्रं न प्रकाशयेत्। - *चाण.सू.*
अपनी कमजोरी का प्रकाशन न करे।

आत्मार्थे को न जीवति। – *हितो.*
अपना पेट पालने के लिए कौन नहीं जीता है ?

आत्मार्थे को न पण्डितः।
अपने हित के लिए कौन समझदार नहीं है ?

आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्। – *महा./चाण./पञ्च.*
अपनी रक्षा के लिए देश को त्याग देना चाहिए। अथवा आत्म-साक्षात्कार के लिए संसार को त्याग देना चाहिए।

इदमरण्ये रुदितमिव।
यह जंगल में रोने जैसा व्यर्थ है।

उच्छेत्तुं प्रभवति यन्न सप्तसप्तिस्तन्नैशं तिमिरमपाकरोति चन्द्रः।
– *अभिज्ञा.*
सूर्य रात्रि के जिस अन्धकार को विनष्ट करने में समर्थ नहीं होता, उसको चन्द्रमा दूर करता है।
जहां काम आवे सुई, कहा करे तलवार।

उत्तीर्णे च परे पारे नौकायाः किं प्रयोजनम्। – *सु.र.भा.*
नदी पार कर लेने के बाद नौका का क्या प्रयोजन ?

उदरनिमित्तं बहुकृतवेशः।
पेट के लिए मनुष्य बहुत वेश धारण करता है।

उप्यते यद् यद् बीजं तत्तदेव प्ररोहति।
जैसा बीज बोओगे, वैसा ही पेड़ पाओगे।
१. बोये पेड़ बबूल का, आम कहां ते खाए।
२. अपनी करनी अपनी भरनी।

एकस्य हि विवादोऽत्र दृश्यते न तु प्राणिनः।
इस दुनिया में किसी अकेले व्यक्ति का झगड़ा नहीं दिखाई देता।
१. एक हाथ से ताली नहीं बजती।
२. अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ता।

ओदकान्तं स्निग्धो जनोऽनुगन्तव्यः। - *अभिज्ञा.*
प्रिय व्यक्ति का अनुगमन जलाशय तक करना चाहिए।

क उडुपेन तरति सागरम्।
कौन छोटी नाव से समुद्र को पार कर सकता है?
ओस चाटने से प्यास नहीं बुझती ?

कः प्राज्ञो वाञ्छति स्नेहं वेश्यासु सिकतासु च। - *कथा.*
कौन बुद्धिमान् व्यक्ति वेश्याओं से प्रेम और बालू से तेल की आशा करेगा ?

कः शरीरनिर्वापयित्रीं शारदीं ज्योत्स्नां पटान्तेन वारयति।
- *अभिज्ञा.*

भला कौन व्यक्ति शरीर के ताप का उपशमन करने वाली शरत्कालीन चांदनी को अपने वस्त्र के आंचल से रोकता है ?

कीदृशस्तृणानामग्निना सह विरोधः। - *मुद्रा.*
आग के साथ तिनकों का कैसा विरोध ?

कुकृत्ये को न पण्डितः। - *सु.र.भा.*
कौन बुरे काम करने में चतुर नहीं है ?

कुदेशेष्वपि जायन्ते क्वचित् केचिन्महाशयाः। - *कथा.*
कभी-कभी निकृष्ट स्थान में भी कई महाविभूतियां पैदा हो जाती हैं।

कुलीनैः सह सम्पर्कं पण्डितैः सह मित्रताम्।
ज्ञातिभिश्च समं सख्यं कुर्वाणो नावसीदति॥ - *चाण.*
कुलीनों के साथ सम्पर्क, पण्डितों के साथ मित्रता और बन्धुओं के साथ मेलजोल रखने वाला व्यक्ति कभी दुःखी नहीं होता है।

को हि स्वार्थमुपेक्षते।
अपना स्वार्थ कौन नहीं देखता ?

क्वापि न गच्छेदनाहूतः।
विना बुलाए कहीं नहीं जाना चाहिए।

क्षीरेण दग्धजिह्वस्तक्रं फूत्कृत्य बालकः पिबति। – *हितो.*
दूध से एक बार जीभ जल जाने पर बच्चा मट्ठा फूंक-फूंक कर पीता है।

खद्योतो द्योतते तावद् यावन्नोदयते शशी।
उदिते तु सहस्त्रांशौ न खद्योतो न चन्द्रमाः॥ – *शा.प.*
जुगनूं तभी तक चमकता है, जब तक चन्द्रमा उदित नहीं होता है, फिर सूर्य के उदित हो जाने पर न जुगनू और न चन्द्रमा ही टिक सकता है।

गजानां पङ्कमग्नानां गजा एव धुरन्धराः। – *हितो.*
दलदल में फंसे हाथी को हाथी ही निकाल सकते हैं।

गतानुगतिको लोकः। – *हितो./पञ्च.*
संसार के सभी लोग प्रायः एक दूसरे के पीछे चलने वाले होते हैं।
जगत् भेड़चाल है।

गते जले स्यात्किमु सेतुबन्धः।
जल के निकल जाने पर बांध बांधने से क्या लाभ ?

चन्दनप्रभवो न दहति किमनलः। – *काद.*
चन्दन से उत्पन्न हुई आग क्या जलाती नहीं है ?

छिन्ने मूले नैव शाखा न पत्रम्। – *चाण.*
जड़ के कट जाने पर न शाखाएं रह सकती हैं और न पत्ते।

जनानने कः करमर्पयिष्यति। – *नैषध.*
लोगों को कहने से कौन रोक सकता है ?

जलं जलेन सम्पृक्तं महाजलाय भवति।
जल जल से मिलकर जलाशय बनाता है।
बूंद-बूंद से घड़ा भरता है।

जलबिन्दुनिपातेन क्रमशः पूर्यते घटः। - *हितो./चाण.*
एक-एक बूंद गिरती रहे, तो घड़ा भर जाता है।
बूंद-बूंद ते घट भरे।

तमस्तपति धर्मांशौ कथमाविर्भविष्यति। - *अभिज्ञा.*
सूर्य के तपते रहने पर अन्धकार कैसे आविर्भूत हो सकता है?

तुष्यन्ति भोजने विप्राः। - *चाण.*
विप्रजन भोजन से सन्तुष्ट होते हैं।
घूंस देकर खुश करना।

त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्। - *महा./पञ्च./चाण.*
यदि एक को छोड़ देने से कुल की रक्षा होती हो, तो उसे छोड़ दें। यदि कुल छोड़ने से ग्राम की रक्षा होती हो, तो उसे छोड़ दें।

दण्डेन च प्रजा रक्ष मा च दण्डमकारणे। - *रामा.*
दण्ड के द्वारा प्रजा की रक्षा करो, पर विना कारण किसी को दण्ड न दो।

दाता क्षमी गुणग्राही स्वामी दुःखेन लभ्यते। - *हितो.*
दानी, क्षमाशील और गुणों को समझने वाला स्वामी मुश्किल से मिलता है।

दिनमणिमभितः कुतोऽन्धकारः।
सूर्य के आसपास अन्धकार कैसे ठहर सकता है?

दुष्टा भार्या शठं मित्रं भृत्यश्चोत्तरदायकः।
ससर्पे च गृहे वासो मृत्युरेव न संशयः॥ - *हितो./चाण.*
दुष्ट पत्नी, दुष्ट मित्र, उत्तर देने वाला नौकर और साँप से युक्त घर में निवास—ये निस्सन्देह मृत्यु जैसे ही हैं।

दूरस्थाः पर्वता रम्याः। - *सु.र.भा.*
पहाड़ दूर से ही सुहावने लगते हैं।
दूर के ढोल सुहावने।

दृष्टिपूतं न्यसेत् पादम्। - *मनु.*
आगे जगह देख कर पैर रखना चाहिए।

न काचस्य कृते जातु युक्ता मुक्तामणेः क्षतिः। - *कथा.*
कांच के लिए मोती की हानि करना उचित नहीं है।
१. दमड़ी की बुढ़िया टका सिर मुँड़ाई।
२. पाउण्ड गंवाकर पैनी बचाने के लिए होशियार।

न कूपखननं युक्तं प्रदीप्ते वह्निना गृहे। - *हितो.*
घर में जब आग लग गई, तब कुआँ खोदना किस काम का ?
१. का वर्षा जब कृषी सुखानी।
२. आग लगने पर कुआँ नहीं खोदा जाता।

न गच्छेत् ब्राह्मणत्रयम्।
तीन ब्राह्मण साथ न जाएं। (शकुनविचार के अनुसार कहा गया है।)

न नग्नो जलं प्रविशेत्।
नहाने के लिए नग्न होकर जल में प्रवेश न करें।

न निष्प्रयोजनमधिकारवन्तः प्रभुभिराहूयन्ते। - *मुद्रा.*
राजाओं के द्वारा अधिकारी लोग विना प्रयोजन के नहीं बुलाए जाते।

न युक्तं प्राकृतमपि रिपुमवज्ञातुम्। - *मुद्रा.*
साधारण शत्रु की भी उपेक्षा करना ठीक नहीं है।

नवाङ्गनानां नव एव पन्थाः। - *सु.र.भा.*
नवयुवतियों की चाल नयी और निराली ही होती है।
हर एक अपनी डेढ़ ईंट की मस्जिद बनाता है।

न विडालो भवेद् यत्र तत्र क्रीडन्ति मूषकाः।
जहाँ बिल्ली नहीं होती, वहाँ चूहे खेलते हैं।
मियां घर नहीं बीवी को डर नहीं।

न व्याघ्रं मृगशिशवः प्रधर्षयन्ति। - *प्रतिमा.*
हिरन के बच्चे बाघ का कुछ नहीं बिगाड़ सकते।

नष्टे मूले नैव फलं न पुष्पम्।
वृक्ष की जड़ नष्ट होने पर न फल मिलता है और न फूल।
जड़ गई सब गया।

नाङ्गीकृतेषु गुणदोषविचारणा स्यात्।
जिसे अपनाया जाता है, उसके गुण और दोष का विचार नहीं किया जाता।

निकटस्थं गरीयांसमपि लोको न मन्यते। - *हितो.*
पास रहने वाले बड़े व्यक्ति का भी लोग आदर नहीं करते हैं।
घर की मुर्गी दाल बराबर।

निजसदननिविष्टः श्वा न सिंहायते किम्।
क्या अपने घर में प्रवेश करते ही कुत्ता शेर नहीं हो जाता ?
अपनी गली में कुत्ता शेर।

निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते। - *हितो.*
जहाँ कोई पेड़ न हो, वहाँ रेंड़ का पेड़ भी सराहा जाता है।
अन्धों में काना राजा।

निर्गुणः स्वजनः श्रेयान्, यः परः पर एव सः। - *रामा.*
स्वजन यदि निर्गुण है, तब भी अच्छा है, क्योंकि वह अपना है। पराया तो आखिर पराया ही है।

निर्वाणदीपे किमु तैलदानम्। - *सु.र.भा.*
दिया बुझ जाने पर तेल डालने से क्या ?
१. अब पछताए क्या होत, जब चिड़ियाँ चुग गईं खेत।
२. समय चूकि पुनि का पछताने।

नैकस्मिन् कान्तारे सिंहयोर्वसतिः क्वचित्।
एक निर्जन वन में दो शेरों का वास नहीं होता।
एक म्यान में दो तलवारें नहीं समा सकती।

पङ्को हि नभसि क्षिप्तः क्षेप्तुः पतति मूर्द्धनि। - *कथा.*
आकाश पर कीचड़ उछालने से वह उछालने वाले के सिर पर ही पड़ता है।
आसमान पर थूका अपने सिर पड़ा।

पयसा सिंचितं नित्यं न निम्बो मधुरायते।
दूध से नित्यप्रति सींचने से नीम मीठी नहीं हो जाती है।
जो तू सींचे दूध से, नीम न मीठी होय।

परसदननिविष्टः को लघुत्वं न याति। - *चाण./भर्तृ.*
दूसरे के घर में रहने से कौन लघुता को प्राप्त नहीं होता है ?
पर घर बसे अनादर होए।

पर्वतानां भयं वज्रात्। - *चाण.*
पर्वतों को बिजली गिरने का डर है।
हर कोई किसी न किसी से डरता है।

पलायमानस्य चौरस्य कन्थैव लाभः।
भागते हुए चोर को गुदड़ी ही बहुत है।
१. भागते चोर को लंगोटी बहुत।
२. भागते भूत की लंगोटी भली।

पाटच्चरलुण्ठिते वेश्मनि यामिकजागरणम्।
चोर से लुटे घर में पहरेदार को जगाना व्यर्थ है।

पाणौ पायसदग्धे तक्रं फूत्कृत्य पामरः पिबति। - *सु.र.भा.*
दूध का जला पामर मट्ठा फूंक कर पीता है।
दूध का जला मट्ठा भी फूंक-फूंक कर पीता है।

पादपानां भयं वातात्। - *चाण.*
पेड़ों को आँधी से गिर जाने का डर है।

पादलग्नं करस्थेन कण्टकेनैव कण्टकम्। - *हितो.*
हाथ में कांटा लेकर पैर में चुभे हुए कांटे को निकालना चाहिए।
कांटे से कांटा निकलता है।

पादाघातस्य यत्पात्रं वार्तया तन्न तुष्यति।
जो पैर से लताड़ने के योग्य है, वह बात से सन्तुष्ट नहीं होता।
लातों के देव बातों से नहीं मानते।

पावको लौहसङ्गेन मुद्गरैरभिहन्यते। - *सु.र.भा.*
लोहे के साथ आग भी हथौड़े से पीटी जाती है।
गेहूं के साथ घुन भी पिसता है।

पिशाचानां पिशाचभाषयैवोत्तरं देयम्।
दुष्टों को दुष्टों की भाषा में ही उत्तर देना चाहिए।
जैसे को तैसा।

पुस्तकं वनिता वित्तं परहस्तगतं गतम्। - *समयो.*
पुस्तक, स्त्री और धन - एक बार दूसरे के हाथ में गए, तो उनको गया हुआ ही समझो।

प्रक्षालनाद् हि पङ्कस्य दूरादस्पर्शनं वरम्। - *हितो./पञ्च.*
पैर में कीचड़ लगाकर धोने से तो कीचड़ को दूर से ही न छूना अच्छा है।
इलाज से बचाव अच्छा।

प्रष्टव्याः सत्पथं वृद्धाः।
अच्छी राह वृद्धों से पूछनी चाहिए।
बड़ों की राह भली।

बन्धनमायान्ति शुका यथेष्टसंचारिणः काकाः।
तोते पिंजरे में बंद किए जाते हैं और कौए स्वच्छन्द घूमते हैं।

बन्ध्या नैव विजानाति गुर्वीं प्रसववेदनाम्। - *कुवलयानन्दः*
बांझ स्त्री प्रसव की वेदना को नहीं जानती।
१. जाके पैर न पड़ी बेवाई, सो का जाने पीर पराई।
२. बांझ कि जान प्रसव कै पीरा।

बहुप्रजाः कृच्छ्रमापद्यत इति परिव्राजकाः।
परिव्राजकों का कथन है कि बहुत सन्तान वाले मनुष्य का जीवन कष्टमय होता है।

बहुप्रजा निर्ऋतिमा विवेश। - *ऋग्वेद.*
बहुत सन्तान वाले मनुष्य कष्ट और दुःख उठाते हैं।

भजेदवस्थोचितां वृत्तिम्।
जैसी अवस्था आ पड़े, वैसी वृत्ति धारण करें।
जैसी पड़े अवस्था, वैसा सहे शरीर।

भिन्नरुचिर्हि लोकः। - *रघु.*
संसार में लोगों की रुचि भिन्न-भिन्न होती है।

मत्स्य एव मत्स्यं गिलति। - *शत.ब्रा.*
एक मछली को दूसरी मछली खाती है।

मुहूर्त्तं ज्वलितं श्रेयो न च धूमायितं चिरम्। - *महा.*
क्षण भर के लिए भी जल कर प्रकाशित होना, देर तक धुएं से घिरे रहने से अच्छा है।

मुहूर्त्तमपि जीवेत् नरः शुक्लेन कर्मणा।
उज्ज्वल काम करते हुए मनुष्य का क्षण भर भी जीना उत्तम है।

मृगा मृगैः सङ्गमनुव्रजन्ति।
मृग मृगों के साथ ही चलते हैं।
पानी से पानी मिले, मिले कीच से कीच।

मृदङ्गो मुखलेपेन करोति मधुरध्वनिम्।
मृदंग भी मुख पर लेप किए जाने पर मीठी ध्वनि निकालता है।
कठोर व्यक्ति भी चापलूसी से मधुर बोलता है।

यः जीवति सः पश्यति।
जो जियेगा, वही देखेगा।

यत्र चौरा न विद्यन्ते तत्र किं स्यात् निरीक्षकैः।
जहाँ चोर नहीं, वहाँ चौकीदार का क्या काम ?

यत्र धूमस्तत्र वह्निः।
जहाँ धुआं होगा, वहाँ आग होगी।

यत्र यादृश आचारः तत्र वर्तेत तादृशम्।
जहाँ का जैसा आचार हो, वहाँ वैसा ही व्यवहार करना चाहिए।

यथा देशस्तथा भाषा। - *सु.र.भा.*
जैसा देश वैसी बोली।

यथा देशस्तथा वेशः।
जैसा देश वैसा वेश।

यथाबीजं तथा निष्पत्तिः। - *चाण.सू.*
जैसा कारण वैसा ही कार्य।
जैसा बो वैसा काट।

यथा राजा तथा प्रजाः। - *चाण.*
जैसा राजा वैसी प्रजा।

यथा वृक्षस्तथा फलम्। - *सु.र.भा.*
जैसा वृक्ष वैसा फल।
जैसा मुंह वैसी चपेट।

यथा हि कुरुते राजा प्रजास्तमनुवर्तते। - *रामा.*
राजा जैसा आचरण करता है प्रजा उसी का अनुसरण करती है।

यदशक्यं न तच्छक्यं यच्छक्यं शक्यमेव तत्।
नोदके शकटं याति न च नौर्गच्छति स्थले॥ – *हितो.*
जो नहीं हो सकता, वह नहीं होगा और जो हो सकता है, वह होगा ही। जैसे बैलगाड़ी न पानी में चल पाती है और नाव न भूमि पर चल सकती है।

यद्यपि शुद्धं लोकविरुद्धं नाकरणीयं नाचरणीयम्। – *सु.र.भा.*
यदि शुद्ध है, किन्तु लोक के विरुद्ध है, तो उसको नहीं करना चाहिए - उसका आचरण नहीं करना चाहिए।

यस्याश्वास्तस्य मेदिनी। – *सु.र.भा.*
जिसके पास अश्व अर्थात् सेना है, वही पृथिवी का स्वामी होता है।
जिसकी लाठी उसकी भैंस।

याचनान्मरणं वरम्।
माँगने से तो मरना अच्छा है।
माँगन गए सो मर गए।

याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा। – *मेघ.*
गुणी व्यक्ति से की गई याचना निष्फल होने पर भी अच्छी है, किन्तु नीच व्यक्ति से की गई याचना सफल होने पर भी अच्छी नहीं है।

यादृशी शीतला देवी तादृशो वाहनः खरः।
जैसी शीतला देवी, वैसा ही उनका वाहन गधा।

ये गर्जन्ति मुहुर्मुहुर्जलधरा वर्षन्ति नैतादृशाः।
जो बादल बार-बार गरजते हैं, वे बरसते नहीं हैं।
गरजने वाले बरसते नहीं।

येन केन प्रकारेण प्रसिद्धः पुरुषो भवेत्। – *सु.र.भा.*
मनुष्य को किसी भी तरह प्रसिद्ध होना चाहिए।
समाज में विशेष स्थान बनाने के लिए कुछ व्यक्ति सब कुछ कर सकते हैं।

योजकस्तत्र दुर्लभः। – *सु.र.भा.*
किसी कार्य की योजना बनाने वाला बड़ी मुश्किल से मिलता है।

यो ध्रुवाणि परित्यज्य ह्यध्रुवाणि निषेवते।
ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति ह्यध्रुवं नष्टमेव च॥ - *हितो./पञ्च.*
जो निश्चित को छोड़कर अनिश्चित की ओर दौड़ता है, उसका निश्चित नष्ट होता है और अनिश्चित के स्थिर होने का क्या ठिकाना ?
१. आधी तज पूरी को धावे, आधी मिली न पूरी पावे।
२. दुविधा में दोनों गए, माया मिली न राम।

रणे योद्धुं प्रवृत्तस्य शत्रुशस्त्रात् तु किं भयम्।
जो युद्ध में लड़ने पर उतारू है, उसे शत्रु के हथियारों से कैसा डर ?
ओखली में सिर दिया तो मूसलों से क्या डरना।

रिक्तपाणिर्न पश्येत् राजानं देवतां गुरुम्। - *सु.र.भा.*
राजा, देवता और गुरु से खाली हाथ नहीं मिलना चाहिए।

लङ्केश्वरो हरति दाशरथेः कलत्रम्।
प्राप्नोति बन्धनमसौ किल सिन्धुराजः॥ - *सु.र.भा.*
रावण ने राम की पत्नी सीता का हरण किया, किन्तु बांधा गया समुद्र।
महिमा घटी समुद्र की रावण बसा परोस।

लेखनी पुस्तकं रामा परहस्ते गता गता।
कलम, पुस्तक और स्त्री दूसरे के हाथ गईं तो फिर गईं।

लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति। - *हितो./चाण.*
आंखों से रहित व्यक्ति को दर्पण क्या लाभ पहुंचा सकता है ?
अन्धा क्या जाने वसन्त की बहार।

वयोऽनुरूपः वेशः।
अवस्था के अनुरूप ही वेश होना चाहिए।

वयोवृद्धास्तपोवृद्धा ज्ञानवृद्धास्तु ये परे।
ते सर्वे धनवृद्धस्य द्वारे तिष्ठन्ति किङ्कराः॥ - *सु.र.भा.*
अवस्था में वृद्ध, तपस्या में वृद्ध और ज्ञान में वृद्ध जो लोग हैं, वे सब - धनवृद्ध (धनी) के द्वार पर नौकर के समान खड़े रहते हैं।

वरमद्य कपोतः श्वो मयूरात्।
आज का कबूतर कल के मोर से भला।
नौ नगद न तेरह उधार।

वर्त्तमानेन कालेन वर्तयन्ति विचक्षणाः। – *सु.र.भा.*
बुद्धिमान् लोग वर्तमान में जीवन बिताते हैं।
जैसा देस वैसा भेस।

विश्वासो नैव कर्तव्यः स्त्रीषु राजकुलेषु च। – *हितो./चाण.*
स्त्रियों और राजकुलों पर कभी विश्वास नहीं करना चाहिए।

वृक्षं क्षीणफलं त्यजन्ति विहगाः।
फलहीन पेड़ को पक्षी छोड़ देते हैं।
मतलब के सब साथी।

शनैः पन्थाः शनैः कन्था शनैः पर्वतलङ्घनम्।
शनैर्विद्या शनैर्वित्तं पञ्चैतानि शनैः शनैः ॥ – *सु.र.भा.*
धीरे-धीरे गन्तव्य की ओर बढ़ें। धीरे-धीरे कथरी सीते रहें। धीरे-धीरे पर्वत लांघें। धीरे-धीरे विद्या अर्जित करते रहें। धीरे-धीरे धन बटोरते रहें। ये पांच बातें धीरे-धीरे करते रहें।
सहज पके सो मीठा होय।

शब्दमात्रान्न भेतव्यमज्ञात्वा शब्दकारणम्। – *हितो.*
शब्द का कारण जाने विना सुनते ही नहीं डर जाना चाहिए।

शुभस्य शीघ्रमशुभस्य कालहरणम्। – *सु.र.भा.*
भले काम के लिए जल्दी करें, बुरे काम के लिए देर।
तुरत दान महाकल्यान।

श्वः सहस्त्रादद्यैकाकिनी श्रेयसी। – *चाण. सू.*
कल के हज़ार से आज की कौड़ी अच्छी है।

सन्दीप्ते भवने च कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः। - *भर्तृ.*
घर में आग लगने पर कुआं खोदने के परिश्रम से क्या लाभ है ?
आग लगने पर कुआं खोदना किस काम का ?

सम्पूर्णकुम्भो न करोति शब्दमर्धो घटो घोषमुपैति नूनम्।
- *सु.र.भा.*
भरा हुआ घड़ा शब्द नहीं करता, किन्तु अधभरा घड़ा शब्द करता है।
अधजल गगरी छलकत जाय।

सर्वत्र विजयमिच्छेत् पुत्रात् शिष्यात् पराभवम्।
अथवा
सर्वत्र विजयम् इच्छन्ति मानवाः, पुत्रात् शिष्यात् च पराजयम्।
मनुष्य सब कहीं विजय की ही इच्छा करे, किन्तु पुत्र और शिष्य से हार जाना पसन्द करे।

सर्वनाशो हि दुस्सहः। - *पञ्च.*
सर्वस्व विनष्ट होने पर दुस्सह दुःख होता है।

स्थानभ्रष्टा न शोभन्ते दन्ताः केशा नखा नराः। - *हितो.*
अपने स्थान से गिरे हुए दांत, बाल, नाखून और मनुष्य अच्छे नहीं लगते।

स्वल्पाद् भूरिरक्षणम्। - *पञ्च.*
थोड़ा देकर अधिक की रक्षा करना चतुरता है।

हिताहितं वीक्ष्य निकाममाचरेत्।
हित और अहित को देखकर आचरण करे।
उतने पैर पसारिए जितनी चादर होय।

हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकापि वा। - *रघु.*
सोने की शुद्धता या मिलावट का पता अग्नि में ही लगता है।
आदमी जाने बसे, सोना जाने कसे।

अति

अतितृष्णा न कर्तव्या तृष्णां नैव परित्यजेत्। - *पञ्च.*
अधिक तृष्णा नहीं करनी चाहिए और तृष्णा को सर्वथा छोड़ना भी नहीं चाहिए।

अतिदानाद् बलिर्बद्धो ह्यतिगर्वेण रावणः। - *चाण.*
अत्यन्त दान देने से राजा बलि बांधा गया। अत्यन्त अभिमान के कारण रावण मारा गया।

अतिनिर्मथनादग्निश्चन्दनादपि जायते।
चन्दन की लकड़ी को अत्यन्त रगड़ो, तो उसमें से भी आग पैदा हो जाती है।
अतिशय रगड़ करै जो कोई। अनल प्रगट चन्दन ते होई॥

अतिपरिचयादवज्ञा। - *सु.र.भा.*
अधिक मेलजोल से अनादर होता है।
मान घटे नित के घर जाए।

अतिलोभो न कर्तव्यो लोभं नैव परित्यजेत्। - *पञ्च.*
अति लोभ नहीं करना चाहिए और लोभ का सर्वथा त्याग भी नहीं करना चाहिए।

अति सर्वत्र वर्जयेत्। - *चाण./पञ्च.*
अति को सर्वत्र त्याग देना चाहिए।
अति का भला न बोलना, अति की भली न चुप।

अतिस्नेहपरिष्वङ्गाद् वर्त्तिरार्द्रापि दह्यते। - *रामा.*
अधिक तेल होने से गीली बत्ती भी जल जाती है।

अतिस्नेहः पापशङ्की। - *अभिज्ञा.*
अत्यधिक स्नेह अनिष्ट की आशंका कराता है।

अत्यादरः शङ्कनीयः। – *मुद्रा.*
अत्यधिक आदर शंका के योग्य है।

अत्यादरो भवेद्यत्र कार्यकारणवर्जितः।
तत्र शङ्का प्रकर्तव्या परिणामेऽसुखावहा॥ – *पञ्च.*
जहाँ विना किसी प्रयोजन के अत्यधिक आदर हो, वहाँ निश्चय ही संशय करना चाहिए, क्योंकि उसका परिणाम अत्यधिक क्लेशदायी होता है।

अत्युपचारः शङ्कितव्यः।
अधिक सत्कार में शंका करनी चाहिए।

सर्वमतिमात्रं दोषाय। – *उत्तर.*
सभी प्रकार की 'अति' दोष उत्पन्न करती है।

सर्व

एकलक्ष्ये सर्वसिद्धिर्लक्ष्याधिक्ये न काचन।
एक लक्ष्य होने पर सब सिद्ध हो जाता है। किन्तु अधिक लक्ष्य होने पर कुछ भी सिद्ध नहीं होता।
एकै साधे सब सधे सब साधे सब जाए।

तस्मिन् सर्वमधीनं हि यत्राधीनो नराधिपः। – *स्वप्न.*
राजा जिस पर अवलम्बित है, उस पर सब निर्भर है।

प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम्। – *अथर्व.*
सब कुछ प्राण में प्रतिष्ठित है।

सर्वः कान्तमात्मीयं पश्यति। – *अभिज्ञा.*
सभी लोग अपने व्यक्ति या वस्तु को सुन्दर समझते हैं।
ग्वालिन अपने दही को खट्टा नहीं कहती।

सर्वः कार्यवशाज्जनोऽभिरमते तत्कस्य को वल्लभः। – *भर्तृ.*
सबकी प्रीति मतलब के लिए होती है, अन्यथा किसका कौन प्रिय है ?
स्वारथ लाय करैं सब प्रीती। सुरमुनिजन सबकी यह रीती॥

सर्वः कालवशेन नश्यति। - *सु.र.भा.*
सब कुछ काल के वशीभूत होकर नष्ट होता है।

सर्वः पदस्थस्य सुहृद् बन्धुरापदि दुर्लभः।
सभी उच्च पद पर स्थित व्यक्ति के मित्र और भाईबन्धु बन जाते हैं, किन्तु विपत्तिग्रस्त व्यक्ति के नहीं।

सर्वः प्रार्थितमर्थमधिगम्य सुखी सम्पद्यते जन्तुः। - *अभिज्ञा.*
सभी प्राणी चाही गई वस्तु को प्राप्त करके सुखी होते हैं।

सर्वः प्रियः खलु भवत्यनुरूपचेष्टः। - *शिशु.*
अपने अनुकूल चेष्टा वाले सभी प्रिय होते हैं।

सर्वः सगन्धेषु विश्वसिति। - *अभिज्ञा.*
सब अपने सहकर्मियों पर विश्वास करते हैं।

सर्वः सर्वं न जानाति। - *मुद्रा.*
सब लोग सब कुछ नहीं जानते।

सर्वः स्वसङ्कल्पवशाल्लघुर्भवति वा गुरुः। - *योग.*
सभी लोग अपने संकल्प के कारण छोटे अथवा बड़े बनते हैं।

सर्वः स्वार्थं समीहते। - *शिशु.*
सभी अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहते हैं।

सर्वमुत्पादि भङ्गुरम्।
सब कुछ जो उत्पन्न हुआ है, नष्ट होगा।

सर्वं च साध्यते बुद्ध्या। - *कथा.*
बुद्धि से सभी कुछ साध्य है।

सर्वं तु तपसा साध्यम्। - *मनु.*
तपस्या से सब कुछ सिद्ध किया जा सकता है।

सर्वं निष्फलतामेति यत्र नास्त्यवधानता।
जहाँ मन की एकाग्रता नहीं होती, वहाँ सब कुछ व्यर्थ हो जाता है।
एक कान से सुनना दूसरे से निकालना।

सर्वं वा इदमेति च प्रेति च। - *शत.ब्रा.*
आना और जाना सबके साथ लगा हुआ है।

सर्वं शून्यं दरिद्रस्य। - *पञ्च.*
गरीब का सब कुछ शून्य है।

सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्। - *महा./मनु.*
सब कुछ सत्य में प्रतिष्ठित है।

सर्वस्तरतु दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यतु।
सर्वः कामानवाप्नोतु सर्वः सर्वत्र नन्दतु॥ - *विक्रम.*
सभी लोग कठिनाइयों को पार करें। सभी लोग कल्याणों को देखें। सभी अपना अभीष्ट प्राप्त करें। सभी सर्वत्र आनन्दित हों।

सर्वस्य जन्तोर्भवति प्रमोदो विरोधिवर्गे परिभूयमाने। - *सु.र.भा.*
अपने शत्रु-पक्ष की पराजय से सभी प्राणियों को प्रसन्नता होती है।

आशीर्वाद

अदीनाः स्याम शरदः शतम्। भूयश्च शरदः शतात्। - *यजु.*
हम सौ वर्ष तक दैन्यभाव से रहित हों और सौ वर्ष से भी अधिक जिएं।

अप्रतिरथो भव। - *अभिज्ञा.*
कोई शत्रु तुम्हारे आगे न टिके। तुम्हारी पराजय न हो।

अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे।
अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु॥ - *अथर्व.*
अन्तरिक्ष हमें अभय प्रदान करे। ये दोनों आकाश और पृथिवी हमें अभय

प्रदान करें। पीछे से, आगे से, ऊपर से और नीचे से - चारों दिशाओं से हमें अभय प्राप्त हो।

अभिप्रेतसिद्धिरस्तु। - *मालवि.*
आपके मन की साध पूरी हो।

अविरहितौ दम्पती भूयास्ताम्। - *विक्रम.*
तुम दोनों पति और पत्नी का कभी विछोह न हो।

आयुष्मान् भव। - *विक्रम.*
तुम्हारी आयु बड़ी हो।

इष्टेन युज्यस्व। - *अभिज्ञा.*
आपका मनोरथ पूरा हो।

कुलधुरन्धरो भव। - *विक्रम.*
कुल के श्रेष्ठ बनो।

चिरं जीव। - *अभिज्ञा./मालवि.*
दीर्घकाल तक जिओ।

चिरं जीवतु। - *स्वप्न.*
जीते रहो।

चिरञ्जीवी भव।
दीर्घ काल तक जीने वाले हो। दीर्घायु हो।

जयतु जयतु देवः। - *अभिज्ञा.*
जय हो, देव (महाराज) की जय हो।

जयतु जयतु भवान्। - *मालवि.*
जय हो, आपकी जय हो।

तथास्तु।
वैसा ही हो।

तव सदृशं भर्तारं लभस्व। - *स्वप्न.*
तुम्हें अपने सदृश पति मिले।

तेजस्वि नावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै। - *यजु.*
हमारा अध्ययन तेज से परिपूर्ण हो। हम कभी परस्पर विद्वेष न करें।

दीर्घायुर्वत्सक उभयकुलनन्दनो भवतु। - *अभिज्ञा.*
तुम्हारा बेटा चिरञ्जीवी होकर दोनों कुलों को सुख दे।

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वं शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि॥ - *यजु.*
द्युलोक शान्त हो, अन्तरिक्ष शान्त हो, पृथ्वी शान्त हो, जल शान्त हो, ओषधियां शान्त हों, वनस्पतियां शान्त हों, समस्त देवता शान्त हों, ब्रह्म शान्त हो, सब कुछ शान्त हो, शान्ति ही शान्ति हो और हमारी वह शान्ति सदा बनी रहे।

नन्दय पितरम्। - *विक्रम.*
अपने पिता को प्रसन्न करो।

पितुराराधको भव। - *विक्रम.*
अपने पिता के भक्त बनो।

पुत्रमाप्नुहि। - *अभिज्ञा.*
पुत्र को प्राप्त करो।

पुत्रवती भव।
बेटे की मां बनो।

भर्तुरभिमता भव। - *अभिज्ञा.*
अपने पति का आदर पाओ।

भर्तुर्बहुमता भव। - *विक्रम.*
अपने स्वामी की प्यारी बनो।

भूयसीः शरदः शतात्। - *अथर्व.*
हम सौ वर्ष से भी अधिक आयु का जीवन जिएं।

मदेम शतहिमाः सुवीराः। - *अथर्व.*
हम सन्तानयुक्त होकर अपने पूर्ण जीवन को प्रसन्नतापूर्वक व्यतीत करें।

यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु ।
शं नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः ॥ - *यजु.*
जहाँ-जहाँ से आवश्यक हो, वहाँ-वहाँ से हमें अभय प्रदान करो। हमारी प्रजा के लिए कल्याण हो। हमारे पशुओं के लिए अभय हो।

यदिच्छामि ते तदस्तु। - *अभिज्ञा.*
तुम्हारे लिए मैं जो-जो चाहता हूँ, वह तुम्हारा हो।

यशस्वी भव।
तुम यश से सम्पन्न हो।

वर्धतां भवती। - *मालवि./विक्रम.*
आप श्रीमती को बधाई है।

वर्धतां भवान्। - *मालवि./विक्रम.*
आपको बधाई है।

वर्धयस्व।
तुम फूलो फलो।

विजयस्व (राजन्)। - *अभिज्ञा.*
आपकी जय हो।

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव।
यद् भद्रं तन्न आ सुव ॥ - *ऋग्वेद.*
हे सर्वप्रेरक देव ! हमारे सारे दुर्गुण और दुर्भाव दूर करिए और जो कल्याणकारी है, उसे हमारे लिए प्रेरित कीजिए।

वीरप्रसविनी भव। - *अभिज्ञा.*
तुम वीर पुत्र की माता बनो।

शतं जीव।
तुम सौ वर्षों तक जिओ।

शतायुर्भव।
तुम सौ वर्ष की आयु वाले हो।

शं मे अस्त्वभयं मे अस्तु। - *अथर्व.*
मेरे लिए कल्याण हो, मेरे लिए अभय हो।

शिवास्ते पन्थानः सन्तु। - *अभिज्ञा.*
तुम्हारे मार्ग मंगलमय हों।

सखि ! सुखमज्जनं ते भवतु। - *अभिज्ञा.*
सखि ! तुम्हारा नहाना-धोना सुख से हो।

सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव ।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु॥ - *ऋग्वेद. / अथर्व.*
हे वधु ! तुम ससुर, सास, ननद और देवरों की सम्राज्ञी के सदृश होओ अर्थात् सबके ऊपर प्रभुत्व करो।

सर्वथा विजयी भवतु। - *विक्रम.*
सब प्रकार से विजयी हो।

सुखी भव।
सुखी रहो।

सौभाग्यवती भव।
सौभाग्य से सम्पन्न रहो।

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥
- *सामवेदः*

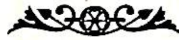
यशस्वी इन्द्र हमारा कल्याण करें। सर्वज्ञाता पूषा देव हमारा कल्याण करें। अरिष्टनाशक गरुड़ देव हमारा कल्याण करें और बृहस्पति भी हमें कल्याण प्रदान करें।

स्वस्ति भवतः। - *विक्रम.*
आपका कल्याण हो।

स्वस्ति भवतु। - *विक्रम.*
कल्याण हो।

स्वस्ति भवते। - *विक्रम.*
आपके लिए कल्याण हो।

स्वस्ति भवत्यै। - *विक्रम.*
आप श्रीमती के लिए कल्याण हो।



विविध

अङ्गुलीप्रवेशात् बाहुप्रवेशम्।
पहले अंगुली डालकर फिर बाँह के प्रवेश की चेष्टा करना।
अंगुली पकड़कर पोंहचा पकड़ना।

अतिगहनं तमो यौवनप्रभवम्। - *काद.*
यौवन से उत्पन्न अन्धेरा बड़ा गहरा होता है।

अन्धस्य दीपः। - *सु.र.भा.*
अन्धे को दीपक दिखाना व्यर्थ है।
भैंस के आगे बीन बजाना।

अपराधानुरूपो दण्डः। - *चाण.सू.*
अपराध के अनुरूप दण्ड होना चाहिए।

अम्बुगर्भो हि जीमूतश्चातकैरभिवन्द्यते। - *रघु.*
जल से लदा हुआ मेघ चातकों से आदर पाता है।
जब लगि पैसा गाँठ में, तब लगि ताको यार।

आकरे पद्मरागाणां जन्म काचमणेः कुतः। - *हितो.*
पुखराजमणि की खान में काचमणि कैसे उत्पन्न होगी ?

आत्मीयाः सदोषाश्चेत् को लाभः परदूषणैः।
यदि अपने गलत हों तो दूसरों के दोष निकालने से क्या लाभ ?
अपना पैसा खोटा तो परखिया का क्या दोष ?

इतोऽन्धकूपः ततो दन्दशूकः।
इधर अन्धा कुआँ है तो उधर जहरीला साँप है।
इधर कुआँ उधर खाई।

इतो नष्टस्ततो नष्टः।
न इधर का हुआ, न उधर का हुआ।

इतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्टः। – *सु.र.भा.*
न इधर का हुआ, न उधर का हुआ।
धोबी का कुत्ता घर का न घाट का।

उष्ट्राणां विवाहेषु गीतं गायन्ति गर्दभाः।
परस्परं प्रशंसन्ति अहो रूपमहो ध्वनिः॥ – *समयो.*
ऊँटों के विवाह पर गदहे गाना गाते हैं। वे परस्पर प्रशंसा करते हैं, "ओह ! कैसा रूप है ? " "ओह ! कैसी ध्वनि है ? "
१. ऊँटों के विवाह में गधे गवैये।
२. जैसा घर वैसा वर।
३. आपस में ही एक दूसरे की प्रशंसा करना।

एकः कपोतपोतः श्येनाः शतशोऽभिधावन्ति।
एक कबूतर नीचे गिरे तो सैकड़ों बाज दौड़ पड़ते हैं।
एक अनार सौ बीमार।

एकतः सर्वपापानि मद्यपानं तथैकतः। – *सु.र.भा.*
एक तरफ सब प्रकार के पाप हैं और दूसरी ओर मदिरापान है। अकेला मद्यपान सब पापों से बढ़कर है।

कञ्चुकमेव निन्दति पीनस्तनी नारी।
बड़े स्तनों वाली नारी चोली को ही कोसती है।
नाच न आवे आंगन टेढ़ा।

कमलवनभूषा मधुकरः।
कमल के वन की शोभा भौरों से होती है।

करी च सिंहस्य बलं न मूषिका।
सिंह के बल को हाथी जानता है, चूहा नहीं।

काकयाचकयोर्मध्ये वरं काको न याचकः। – *सु.र.भा.*
कौआ और भिखारी के बीच में कौआ श्रेष्ठ है, मांगने वाला नहीं।

काकोऽपि जीवति चिराय बलिञ्च भुङ्क्ते। – *पञ्च.*
कौआ भी बहुत दिनों तक जीता है और बलि खाता है। मनुष्य का केवल पेट पालने के लिए जीवित रहना व्यर्थ है।
अपना पेट तो कुत्ता भी भर लेता है।

काञ्चनमणिसंयोगो न जनयति कस्य लोचनानन्दम्।
स्वर्ण और मणि का संयोग किसकी आंखों को अच्छा नहीं लगता है ?
सोने में सुहागा।

काणेन चक्षुषा किं वा चक्षुःपीडैव केवलम्। – *चाण.*
कानी आंख से क्या ? वह तो केवल पीड़ा ही करती है।

किमिष्टमन्नं खरशूकराणां रत्नोपहारैः किं मर्कटानाम्। – *सु.र.भा.*
गदहा और सुअर के लिए कैसा की मनचाहा भोजन हो, बंदरों के लिए कैसे ही रत्नों के उपहार हों, फिर भी क्या वे अपनी आदतें बदलते हैं?
भैंस के आगे बीन बजाओ, भैंस खड़ी पगुराए।

किं वाऽभविष्यदरुणस्तमसां विभेत्ता
तं चेत्सहस्रकिरणो धुरि नाकरिष्यत्॥ – *अभिज्ञा.*
यदि सूर्य भगवान् अरुण को अपना सारथि न बनाते तो क्या वह घने अन्धकार को मिटा सकता था ?

कुकर्मान्तं यशो नृणाम्। – *पञ्च.*
राजाओं का यश बुरे काम करने से समाप्त हो जाता है।

कृत्स्नमेकत्र दुर्लभम्।
सब कुछ एक स्थान पर मिलना कठिन है।

कोपोऽपि देवस्य वरेण तुल्यः।
देवता का क्रोध भी वरदान जैसा होता है।

क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः। - *शिशु.*
जो प्रतिक्षण नया लगता है, वही रमणीयता का स्वरूप है।

क्षते क्षारप्रक्षेपः।
जले पर नमक छिड़कना।

क्षते प्रहारा निपतन्त्यभीक्ष्णम्। - *पञ्च.*
घाव पर निरन्तर चोट लगती है।

क्षुधार्तो न तृणं चरति सिंहः। - *चाण. सू.*
भूख से पीड़ित होने पर भी शेर घास नहीं खाता है।

गेहे नर्दी गेहे शूरः।
घर में बैठे-बैठे बड़बड़ाने वाला - घर का ही शूर।

चौरे गते वा किमु सावधानम्।
चोर के निकल भागने पर सावधान होने से क्या ?
साँप निकल गया तो लकीर पीटा करो।

जले तैलं खले गुह्यं पात्रे दानं मनागपि।
प्राज्ञे शास्त्रं स्वयं याति विस्तारं वस्तुशक्तितः॥ - *चाण.*
पानी में तेल, दुर्जन में गुप्त बात, सत्पात्र में दान और विद्वान् व्यक्ति में शास्त्र का उपदेश थोड़ा भी हो तो स्वयं फैल जाता है, क्योंकि इनमें वस्तु की शक्ति प्रधान कारण है।

जीवन्तोऽपि मृताः पञ्च व्यासेन परिकीर्तिताः।
दरिद्रो व्याधितो मूर्खः प्रवासी नित्यसेवकः॥ - *पञ्च.*
भगवान् व्यास का कहना है कि दरिद्र, रोगी, मूर्ख, प्रवासी तथा सदा सेवक—ये पाँच जीवित रहने पर भी मरे हुए के समान ही हैं।

तिलतैलमेव मिष्टं येन न दृष्टं घृतं क्वापि।
जिसने घी कभी नहीं देखा, उसके लिए तिल का तेल ही मीठा है।
बन्दर क्या जाने अदरख का स्वाद।

त्रिशङ्कुरिवान्तरा तिष्ठ। - *अभिज्ञा.*
त्रिशंकु की तरह बीच में लटके रहो।*
धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का।

दन्तभङ्गो हि नागानां श्लाघ्यो गिरिविदारणे।
पहाड़ तोड़ने में हाथियों का दांत टूटना भी प्रशंसा के योग्य होता है।
बड़े कार्य को सिद्ध करने में छोटी क्षति माने नहीं रखती।

दशपुत्रसमो द्रुमः।
एक पेड़ दस पुत्रों के बराबर होता है।

दुग्धं पश्यति मार्जारी न तथा लगुडाहतिम्। - *सु.र.भा.*
बिल्ली जैसा दूध का ख्याल रखती है, वैसा लाठी के प्रहार का नहीं।
लोभी धन को देखता है, विपत्ति को नहीं।

न खलु बधिराणां कुतूहलमातनोति कोकिलालापः।
कोयल की आवाज़ बहरे व्यक्तियों में कुतूहल उत्पन्न नहीं करती।
बन्दर क्या जाने अदरक का स्वाद।

न खलु स उपरतो यस्य वल्लभो जनः स्मरति। - *सु.र.भा.*
वह निश्चय ही मरा नहीं है, जिसे प्रियजन याद करते रहते हैं।

नग्नक्षपणके देशे रजकः किं करिष्यति। - *चाण.*
नंगों के देश में धोबी का क्या काम ?
धोबी बस कर क्या करे दिगम्बर के गाँव।

न नश्यति तमो नाम कृतया दीपवार्तया।
केवल दीपक की चर्चा करने से अन्धकार दूर नहीं होता है।
केवल बातें बनाने से काम नहीं होते।

---

* सूर्यवंशी राजा त्रिशंकु विश्वामित्र के तपोबल से सशरीर स्वर्ग जाने लगे, तब देवताओं ने उन्हें वहाँ घुसने नहीं दिया। फलतः वे स्वर्ग और पृथिवी के बीच में लटक गए।

न भूतो न भविष्यति। – *हितो.*
इसके समान न कोई हुआ है और न होगा।

न मुनिः पुनरायातो न चासौ वर्धते गिरिः।
न मुनि फिर आता है और न यह पर्वत बढ़ता है।
न नौ मन तेल होगा और न राधा नाचेगी।

न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवति। आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति ॥ – *बृह.उप.*
देखो, संसार में कोई भी पदार्थ अपने ही रूप में प्रिय नहीं होता। आत्मा की कामना के लिए ही हर कोई प्रिय होता है।

न वृथा शपथं कुर्यात्। – *मनु.*
हर किसी बात पर व्यर्थ में शपथ नहीं खानी चाहिए।

न व्यापारशतेनापि शुकवत्पाठ्यते बकः। – *हितो.*
चाहे सैकड़ों उपाय क्यों न किए जाए, पर कोई बगुले को तोते की तरह नहीं पढ़ा सकता।
कुत्ते की दुम टेढ़ी ही रहती है।

न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धाः
वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मम्। – *महा. / हितो.*
वह सभा नहीं जहाँ बूढ़े न हों। वे बूढ़े नहीं जो धर्म का उपदेश न दें।

न सुवर्णे ध्वनिस्तादृग् यादृक् कांस्ये प्रजायते। – *सु.र.भा.*
सोने में वैसी आवाज़ नहीं होती, जैसी कांसे में होती है।
हाथी के दाँत खाने के और, दिखाने के और।

न स्पृशति पल्वलाम्भः पञ्जरशेषोऽपि कुञ्जरः क्वापि। – *सु.र.भा.*
हाथी पञ्जरमात्र रह जाने पर भी कभी छिछली तलैया का पानी नहीं छूता।

नहि चूडामणिं पादे नूपुरं मूर्ध्नि धार्यते।
कोई भी चूड़ामणि को पैर में नहीं पहनता है और न नुपूर को सिर में।
जो वस्तु जहाँ के योग्य होती है, वहीं सुशोभित होती है।

नहि तापयितुं शक्यं सागराम्भस्तृणोल्कया।
फूस की आग समुद्र के जल को गरम नहीं कर सकती है।
अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता।

नहि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्। - *महा.*
मनुष्य से बढ़कर कुछ भी नहीं है।

न हि सिंहो गजास्कन्दी भयाद् गिरिगुहाशयः। - *रघु.*
हाथी पर हमला करने में समर्थ शेर डर के कारण पहाड़ की गुफा में नहीं रहता है।

नह्यमूला प्रसिध्यति। - *सु.र.भा.*
विना मूल के कोई भी बात नहीं फैलती है।
अफवाहों के पीछे कुछ तो होता है।

नासमीक्ष्य परं स्थानं पूर्वमायतनं त्यजेत्। - *सु.र.भा.*
दूसरा स्थान देखे विना पहला स्थान नहीं छोड़ना चाहिए।

नास्ति गंगासमं तीर्थं नास्ति मातृसमो गुरुः।
पवित्र गंगा नदी के समान कोई तीर्थ नहीं है और माता के समान कोई गुरु नहीं है।

निस्सारस्य पदार्थस्य प्रायेणाडम्बरो महान्। - *सु.र.भा.*
निस्सार पदार्थ का ही प्रायः महान् आडम्बर होता है।
१. ऊंची दुकान, फीके पकवान।
२. ढोल के भीतर पोल।

नीलवर्णश्रृगालः। – *हितो.*
नीले रंग का सियार।*
१. रंगा सियार।
२. बाहर से कुछ अन्दर से कुछ।

नृपे मूढे कुतो नयः।
राजा के विवेकहीन हो जाने पर न्याय कहाँ ?
अन्धेर नगरी चौपट राजा, टके सेर भाजी टके सेर खाजा।

नोलूकोऽप्यवलोकते यदि दिवा सूर्यस्य किं दूषणम्। – *भर्तृ.*
यदि उल्लू दिन में नहीं देख पाता तो इसमें सूर्य का क्या दोष ?

पत्रं नैव यदा करीरविटपे दोषो वसन्तस्य किम्। – *भर्तृ.*
यदि करील के कंटीले पत्रविहीन झाड़ पर पत्ते न आएं तो इसमें वसन्त ऋतु का क्या दोष ?
किस्मत अपनी अपनी।

पिण्डमुत्सृज्य करं लेढि।
लड्डू त्याग कर हाथ चाटना।
बड़ा लाभ छोड़कर छोटे की ओर बढ़ना।

पुनर्मूषको भव।
शेर से दोबारा चूहा बन जाओ।
अपनी औकात में रहो।

प्रत्यक्षे किमनुमानम्।
समीप में स्थित के लिए अनुमान कैसा ?
हाथ कंगन को आरसी क्या ?

---

* **आत्मपक्षं परित्यज्य परपक्षेषु यो रतः।**
स परैर्हन्यते मूढो नीलवर्णश्रृगालवत्।। – *हितो.*
जो प्राणी अपना पक्ष त्याग कर पराए पक्ष में जा मिलता है, वह मूर्ख अपने शत्रुओं द्वारा उसी प्रकार मारा जाता है, जिस प्रकार कथा में व्याघ्र द्वारा नीले रंग का सियार मारा गया था।

प्राणी प्राप्य रुजा पुनर्न शयनं शीघ्रं स्वयं मुञ्चति। - *स्वप्न.*
रोग के कारण लेटा हुआ व्यक्ति अपने आप शीघ्र शय्या का त्याग नहीं करता है।

प्राप्ते तु षोडषे वर्षे गर्दभी चाप्यप्सरायते।
सोलह वर्ष की युवावस्था में गदही भी अप्सरा लगती है।

प्रासादशिखरस्थोऽपि काकः किं गरुडायते। - *चाण. / पञ्च.*
महल के ऊंचे शिखर पर बैठकर कौआ क्या गरुड़ हो जाता है?

बधिरस्य गानम्। - *सु.र.भा.*
बहरे का गाना सुनना व्यर्थ है।
भैंस के आगे बीन बजाना।

बह्वारम्भो लघुक्रिया।
तैयारी बहुत की, पर काम ज़रा सा था।
खोदा पहाड़ निकली चुहिया।

ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति। - *अथर्व.*
ब्रह्मचर्यरूप तपस्या से राजा राष्ट्र की रक्षा करता है।

मक्षिकास्थाने मक्षिका।
मक्खी के स्थान पर मक्खी रखते चले गए।
नकल करना।

मनुर्भव, जनया दैव्यं जनम्। - *ऋग्वेद.*
मनुष्य बनो। दिव्य सन्तान उत्पन्न करो।

मलयेऽपि स्थितो वेणुः वेणुरेव न चन्दनम्।
मलयपर्वत पर स्थित बाँस बाँस ही रहता है, चन्दन नहीं हो जाता।
काबुल में गधा, गधा ही होता है।

मलये भिल्लपुरन्ध्री चन्दनतरुमिन्धनं कुरुते। - *सु.र.भा.*
भील की स्त्री मलयपर्वत पर चन्दन की लकड़ी को ही इन्धन बनाती है।

१. मलयागिरि की भिल्लनी चन्दन देत जराय।
२. घर की मुर्गी दाल बराबर।

महति दर्पणे महन्मुखम्।
बड़े दर्पण में बड़ा मुख दिखता है।
जितना गुड़ उतना मीठा।

मिष्टान्नं वरयात्रिकाः।
बराती केवल मिठाई चाहते हैं।

मुखमस्तीति वक्तव्यं दशहस्ता हरीतिका।
मुंह से ही कहना है तो हरड़ दस हाथ की कही जा सकती है।
कहना आसान करना मुश्किल।

मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना।
प्रत्येक सिर में अलग-अलग विचार होते हैं।
१. अपना अपना ढंग है।
२. अपनी अपनी समझ है।

मुरारेः तृतीयः पन्थाः।
मुरारि का रास्ता ही तीसरा है।
कानी गाय के अलगे बधान।

यौवनं धनसम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकता।
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्।। - *हितो.*
यौवन, सम्पत्तियाँ, प्रभुता और अज्ञान - ये एक-एक ही अनर्थ के कारण हैं। फिर जहाँ ये चारों हों, वहाँ क्या स्थिति होगी ?

रत्नाकरो जलनिधिरित्यसेवि धनाशया।
धनं दूरेऽस्तु वदनमपूरि क्षारवारिभिः।।
समुद्र तो रत्नाकर है, यह सोचकर धन की आशा से उसमें उतरे थे, किन्तु धन तो दूर रहा, मुँह ही नमकीन पानी से भर गया।
चौब्बे गए छब्बे बनने दुब्बे ही रह गए।

राजा कालस्य कारणम्।
राजा समय बदलने का कारण होता है।

राजा बन्धुरबन्धूनाम्।
जिसका कोई बन्धु नहीं, उसका बन्धु राजा होता है।

रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय। - *मेघ.*
सभी रिक्त पदार्थ हल्के होते हैं, पूर्णता भारी बनाती है।

रूपं वरयते कन्या माता वित्तं पिता श्रुतम्।
बान्धवाः कुलमिच्छन्ति मिष्टान्नमितरे जनाः॥ - *पञ्च.*
विवाह-सम्बन्ध में कन्या सुन्दर वर चाहती है। माता वर का धन देखती है और पिता उसकी विद्या देखता है। बन्धुजन वर का कुल देखते हैं और बाकी लोग मिठाई चाहते हैं।

वासः प्रधानं खलु योग्यतायाः। - *सु.र.भा.*
योग्यता दिखाने के लिए यथायोग्य वस्त्र पहनना आवश्यक है।

विक्रीते करिणि किमङ्कुशे विवादः। - *सु.र.भा.*
हाथी को बेच देने के बाद अंकुश के लिए क्या झगड़ना ?
हाथी निकल गया पूँछ रह गई।

विक्रीयन्ते न घण्टाभिर्गावः क्षीरविवर्जिताः। - *शा.प.*
दूध न देने वाली गायें गले में घण्टे लटका देने से अधिक मूल्य में नहीं बिक पातीं।

विना मलयमन्यत्र चन्दनं न प्ररोहति। - *पञ्च.*
मलयपर्वत के अतिरिक्त चन्दन वृक्ष और कहीं नहीं उगता।

विह्वला हि राजप्रकृतिः। - *काद.*
राजा का स्वभाव शंकालु होता है।

वृद्धा नारी तपस्विनी। - *चाण.*
बूढ़ी नारी तपस्विनी हो जाती है।
सौ चूहे खाकर बिल्ली हज को चली।

वैद्यराज ! नमस्तुभ्यं यमराजसहोदर ।
यमस्तु हरते प्राणान् वैद्यः प्राणान् धनानि च॥ - *सुभा.*
वैद्यराज ! आपको नमस्कार है। आप यमराज के सगे भाई हैं। यमराज केवल प्राण लेते हैं परन्तु आप धन और प्राण दोनों लेते हैं।

शिरसि भयमतिदूरे तत्प्रतीकारः। - *मुद्रा.*
सिर पर भय है और उसको दूर करने का उपाय अत्यन्त दूर है।

शिरसि मसीपटलं दधाति दीपः। - *मालवि.*
दीपक अपने सिर पर कालिख धारण करता है।

शूराणां च नदीनां च प्रभवा दुर्विदाः किल।
वीरों और नदियों की उत्पत्ति जानना अत्यन्त कठिन है।

श्रेयसि केन तृप्यते। - *शिशु.*
कल्याण से किसकी तृप्ति होती है ?

सर्वं श्रद्धया दत्तं श्राद्धम्। - *प्रतिमा.*
श्रद्धापूर्वक दिया गया सब कुछ ही श्राद्ध है।

सर्वजनमनोभिरामं खलु सौभाग्यं नाम। - *स्वप्न.*
निश्चय ही सौन्दर्य सबके मन को अच्छा लगता है।

सर्वारम्भास्तण्डुलप्रस्थमूलाः। - *सु.र.भा.*
सभी कार्यों के मूल में प्रस्थ भर चावल अर्थात् आजीविका होती है।

सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः। - *गीता*
सभी कार्य आरम्भ में किसी न किसी दोष से ढँके होते हैं, जैसे धुएँ से अग्नि।

सा भार्या या प्रियं ब्रूते स पुत्रो यत्र निर्वृतिः।
तन्मित्रं यत्र विश्वासः स देशो यत्र जीव्यते ॥ - *महा.*
भार्या वही है, जो प्रिय बोले। पुत्र वही है, जिससे सुख मिले। मित्र वही है, जिसमें विश्वास हो। देश वही है, जहाँ जीविका हो।

सा सभा यत्र सभ्योऽस्ति। - *कथा.*
जहाँ सभ्य जन हो, वही सभा है।

सा सेवा या प्रभुहिता। - *पञ्च.*
स्वामी के हितों का सम्पादन करने वाली क्रिया सेवा कही जाती है।

सूर्य एकाकी चरति। - *यजु.*
सूर्य अकेला ही विचरण करता है।

स्वजातिर्दुरतिक्रमा। - *पञ्च.*
अपनी जाति का मोह त्यागना कठिन होता है।
जाति-मोह न छूटे।

स्वदेशजातस्य नरस्य नूनं गुणाधिकस्यापि भवेदवज्ञा।
गुणों की अधिकता होने पर भी प्रायः व्यक्ति की अपने देश में अवहेलना होती है।
घर का जोगी जोगड़ा आन गाँव का सिद्ध।

स्वहस्तेनाङ्गारकर्षणम्।
अपने हाथ से जलता हुआ कोयला खींचना अपना हाथ जलाना है।
अपने पैर पर कुल्हाड़ी मारना।

स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्। - *तैत्ति.उप.*
अध्ययन और प्रवचन में आलस्य नहीं करना चाहिए।

हंसः श्वेतो बकः श्वेतः को भेदो बकहंसयोः।
नीरक्षीरविभागे तु हंसो हंसो बको बकः॥ - *सु.र.भा.*
हंस सफेद होता है और बगुला भी सफेद होता है - रंग की दृष्टि से दोनों में कोई भेद नहीं है। किन्तु नीरक्षीर के विवेक में हंस समर्थ होता है, बगुला नहीं। अतः तब निश्चित हो जाता है कि हंस हंस ही है और बगुला बगुला है।
नीरक्षीर-विवेक।

हंसो हि क्षीरमादत्ते तन्मिश्रा वर्जयत्यपः। - *अभिज्ञा.*
हंस दूध का ग्रहण करता है और उसमें मिले हुए पानी को छोड़ देता है।
सार सार को गह रहे थोथा देय उड़ाय।

हिमवति दिव्यौषधयः शीर्षे सर्पः समाविष्टः। - *मुद्रा.*
दिव्य ओषधियाँ हिमालय में हैं और साँप सिर पर बैठा है।
१. जब तक हिमालय से संजीवनी आए, बीमार मर जाए।
२. साँप तो सिर पर, बूटी पहाड़ पर।



लेखिका-परिचय

संस्कृत प्राध्यापन और अनुसंधान में पिछले लगभग पच्चीस वर्षों से निष्ठापूर्वक समर्पित डॉ. शशि तिवारी वैदिक वाङ्मय और संस्कृत साहित्य की विशिष्ट विदुषी हैं। अब तक आपकी छह पुस्तकें और सत्तर शोधपत्र प्रकाशित हो चुके हैं। 'ऋग्वेदीय आप्रीसूक्त' तथा 'सूर्यदेवता - वैदिक और वेदोत्तर संस्कृत सूर्यस्तुतियों में' आपके अकादमी-पुरस्कृत एवं सुप्रतिष्ठित ग्रन्थ हैं। आपने देश और विदेश की अनेक वेद-संगोष्ठियों और प्राच्यविद्या-सम्मेलनों में भाग लिया है। दिल्ली संस्कृत अकादमी द्वारा १९९५ वर्षीय 'संस्कृत शिक्षक पुरस्कार' से सम्मानित डॉ. तिवारी सम्प्रति मैत्रेयी कॉलेज (दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली) के संस्कृत विभाग में रीडर के पद पर कार्यरत हैं।

सर्वः का
ग्वालिन

गते शोको
बीती ताहि

ISBN : 81-230-0459-1

संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति।
जैसी संगत वैसी रंगत।

प्राणिनां हि निकृष्टापि जन्मभूमिः परा प्रि
जो सुख अपने घर में, वह न किसी के दर में।

राकाचन्द्रस्य सौन्दर्यं वर्तते न सदा समम्।
चार दिन की चाँदनी फिर अँधेरी रात।

अर्धो घटो घोषमुपैति
थोथा चना बाजे घना।

ममात्मीयं पश्यति।
पने दही को खट्टा नहीं कहती।

यत्नं विना
सेवा बिन मेव

न कर्त्तव्यो भविष्यन्नैव चिन्तयेत्।
सा आगे की सुधि लेय।



प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

भव्यानां भवितव्यानां प्रथमं स्यात् शुभावहम्।
बिरवान के होत चीकने पात।